ऋषि प्रसाद

वर्ष : १५ अंक : १३९
जुलाई २००४ मूल्य : रु. ५-००
आषाढ़-मलमास, वि.सं.२०६१

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक: रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक: रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक: US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'** श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site: www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

अनुक्रम

※ पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग ※

सोनी चैनल पर 'संत आसाराम वाणी' प्रतिदिन सुबह ७-०० बजे
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २-०० बजे तथा रात्रि ९-४० बजे
आस्था चैनल पर 'संत श्री आसारामजी बापू की अमृतवाणी' सुबह ८-०० तथा दोप. २-३० बजे
साधना चैनल पर 'संत श्री आसारामजी बापू की सत्संग-सरिता' रोज रात्रि ९-०० बजे
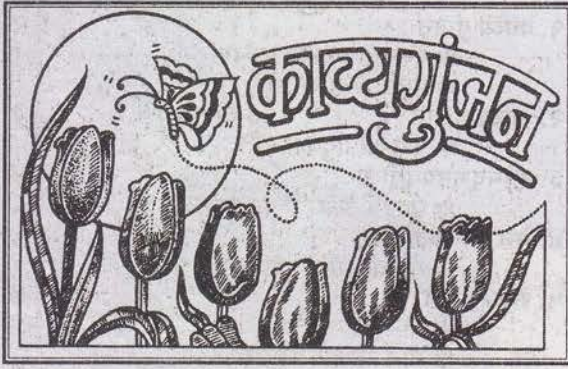
ऐसा दो वरदान गुरुवर...

ऐसा दो वरदान गुरुवर, भवसागर तर जाऊँ।
जन्म-जन्म के चक्कर में अब, बार-बार ना आऊँ ॥
भूलभुलैया में हूँ भटका, इन्द्रियों के विकारों में अटका।
माया ने है मोह में पटका,
शरण में आके गुरुवर सच्ची शांति पाऊँ ॥
जग के खेल में ऐसा खोया,
'मैं' को न मारा प्रभु को खोया।
मोह के वश में बहुत हूँ रोया, अब सच्ची राह मैं पाऊँ ॥
मन में रहे बस तुम्हारा चिंतन,
और न मैं कुछ जानूँ भगवन्।
तुम्हारा पावन नाम हृदय में, निशदिन जपता रहूँ॥
बार-बार करूँ चरण में वंदन,
भक्तिभाव हृदय में भरकर।
ऐसा दो वरदान गुरुवर, चित्तशुद्धि को पाऊँ ॥
ऐसे दिन कब आयेंगे, जब हम ध्यान लगायेंगे।
गुरु साहिब के गीत गायेंगे, प्रभु प्रीत को पूरा पायेंगे ॥
ऐसे दिन कब आयेंगे, हम अपनी तड़प बढ़ायेंगे।
मन मोम को पिघलायेंगे, गुरु ज्योत से ज्योत जगायेंगे ॥
ऐसे दिन कब आयेंगे, सद्गुरु प्रसन्न हो जायेंगे।
ममता को मार भगायेंगे, माया से पार हो जायेंगे ॥
ऐसे दिन कब आयेंगे, अनंत से एक हो जायेंगे।
हम समदृष्टि को पायेंगे, सद्गुरु-प्रसाद पचायेंगे ॥
ऐसे दिन कब आयेंगे, गुरुभक्ति में रँग जायेंगे।
चुनरी अपनी रँगायेंगे, पार ये नाव ले जायेंगे ॥

- भावेश पी. वाढेर, अमदावाद.

*

पावन बना रहे हो

स्मित तरंग बनकर, जो बह रही मधुरता ।
अद्भुत सुखद अवस्था, मतवाले पा रहे हैं ॥
तुम आये तराना बनकर, सबको लुभा रहे हो ।
'सरल है बहुत यह', अचरज ये कह रहे हो ॥
डूबे हुए नैनों से, सबको डुबो रहे हो।
डूबो सभी अरे तुम, क्यों सिसक रहे हो ?
मिजाज सुखद ऐसा, और रूप राम जैसा ।
ब्रह्मर्षियों की अमर वाणी, सबको सुना रहे हो ॥
यह योग है यह भोग है, राहें दिखा रहे हो ।
भोग में डूबे हुओं को, बाँहें दिखा रहे हो ॥
बैठे हो पास आकर, सबको बुला रहे हो ।
भव की थकान मिटाकर, सुख-शांति लुटा रहे हो ॥
अरे निकट तो आओ ! क्यों मुखड़ा घुमा रहे हो ?
जल रहे हो जग में जाकर, करुणावश ये कह रहे हो ॥
है आनंद कहाँ पूरा ? पूरा बता रहे हो ।
विषयों को विष कहकर, पल्ला छुड़ा रहे हो ॥
निज झोलियाँ तो खोलो, पैमाना हटा रहे हो ।
जी भर पिला-पिलाकर, पावन बना रहे हो ॥
उजड़े हुए मरुस्थल, सींचे हैं मेघ बनकर।
ये चमन उजड़ न जाये, रक्षण भी कर रहे हो ॥

- मनोज, सूरत (गुज.).

*

गुरुभक्त्या च शक्रत्वमभक्त्या शूकरो भवेत्।
गुरुभक्तः परं नास्ति भक्तिशास्त्रेषु सर्वतः ॥

'जिसके हृदय में गुरुभक्ति है वह इंद्र पद को प्राप्त होता है अर्थात् उसके हृदय में देवत्व खिलता है एवं जिसकी गुरुचरणों में भक्ति नहीं है वह शूकर (सुअर) होता है अर्थात् उसमें असुरत्व प्रकट होता है। समस्त भक्तिशास्त्रों में यह कहा गया है कि गुरुभक्ति से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।'

(रुद्रयामलम् : १.२४३)

परा श्रीपादुकास्मृतिः

[गतांक का शेष]

न पादुकापरो मंत्रो न देवः श्रीगुरोः परः ।
न हि शाक्तात् परा दीक्षा न पुण्यं कुलपूजनात् ॥
ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥
गुरुमूलाः क्रियाः सर्वा लोकेऽस्मिन् कुलनायिके ।
तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यं सिद्ध्यर्थं भक्तिसंयुतैः ॥
तावदार्त्तिर्भयं शोको लोभमोहभ्रमादयः ।
यावन्नायाति शरणं श्रीगुरुं भक्तवत्सलम् ॥
तावद् भ्रमन्ति संसारे सर्वदुःखमलीमसाः ।
न भवेत् सद्गुरौ भक्ति र्यावद्देवेशि देहिनाम् ॥
सर्वसिद्धिफलोपेतो मंत्रः शुध्यति शोभनः ।
गुरुप्रसादमूलोऽयं परतत्त्वमहाक्रमः ॥
यथा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्नो वरदो मनुम् ।
तथा भक्त्या धनैः प्राणैर्गुरुं यत्नेन तोषयेत् ॥
यदा दद्यात् स्वशिष्याय स्वात्मानं देशिकोरागः ।
तदा मुक्तो भवेच्छिष्यस्ततो नास्ति पुनर्भवः ॥
तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ यदा भवेत् ।
गुरौ प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापक्षयो भवेत् ॥
मनसापि न कांक्षन्ते यान् कामाननुजीविनः ।
सम्पादयन्ति तान् सर्वान् स्वामिनो भक्तवत्सलाः ॥
ब्रह्माविष्णुमहेशादिदेवतामुनियोगिनः ।
कुर्वन्त्यनुग्रहं तुष्टा गुरौ तुष्टे न संशयः ॥
भक्त्या तुष्टेन गुरुणा यः प्रदिष्टः कृपालुना ।
कर्ममुक्तो भवेच्छिष्यो भुक्तिमुक्त्योः स भाजनम् ॥
शिष्येणापि तथा कार्यं यथा सन्तोषितो गुरुः ।
प्रियं कुर्याच्च देवेशि मनोवाक्कायकर्मभिः ॥

अर्थ: (भगवान शंकर देवी पार्वती से बोले :) ''गुरु-चरणपादुकाओं से बढ़कर कोई मंत्र नहीं है [अर्थात् गुरुदेव के वचनामृत ही उनके चरणकमल हैं और उनके वचन ही मूल मंत्र है (**मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यम्**)], गुरुदेव से बढ़कर कोई देव नहीं है, गुरुदेव की शक्ति से बढ़कर कोई दीक्षा नहीं है (यहाँ भावार्थ यह है कि जिस दीक्षा में सद्गुरु की शक्तिपात वर्षा समाहित है, उस जैसी अन्य कोई दीक्षा नहीं है अर्थात् साधारण व्यक्ति कोई मंत्र बोले तो वह अक्षरों का समूहमात्र है, जिसे 'अग्नि पुराण' में सुप्त (सोया हुआ) मंत्र कहा गया है। परंतु वही मंत्र जब ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु देते हैं तो उसमें उनकी आत्मशक्ति भरी होती है, जिसे 'अग्नि पुराण' में जागृत मंत्र कहा गया है। अतः सद्गुरु की उस शक्तिभरी दीक्षा जैसी अन्य कोई दीक्षा नहीं है।) और कुल के पूजन से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है। (यहाँ कुल-पूजन का स्थूल अर्थ तो यह है कि जिन्होंने हमें जन्म दिया है, जिनके कुल में हमने जन्म लिया है उन माता-पिता आदि का पूजन। पर सूक्ष्म अर्थ है कुल यानी मूल अर्थात् जिससे हमारी वंश-परम्परा का प्रारम्भ हुआ है, उस मूल स्वरूप परब्रह्म परमात्मा के पूजन से बढ़कर अन्य कोई पुण्य नहीं है और सद्गुरु तो परमात्म-स्वरूप ही होते हैं। इसलिए सद्गुरु-पूजन से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है।)

ध्यान का मूल गुरुदेव की मूर्ति है, पूजा का मूल गुरुदेव के श्रीचरणकमल हैं, मंत्र का मूल श्रीगुरुदेव के मुख से निकला हुआ वाक्यामृत है और मोक्ष का मूल गुरुदेव की कृपा है।

हे कुलनायिके! इस लोक में समस्त क्रियाओं के मूल गुरुदेव ही हैं, इसलिए नित्य सिद्धि (सफलता) के लिए भक्तियुक्त होकर उनकी सेवा करनी चाहिए।

(इस संसार में) पीड़ित व्यक्ति को भय, शोक, लोभ, मोह, भ्रम आदि तब तक पीड़ित करते हैं, जब तक वह भक्तवत्सल श्रीगुरुदेव की शरण में नहीं आ जाता।

हे देवी! जब तक मनुष्य में सद्गुरु के प्रति भक्ति प्रकट नहीं हो जाती, तब तक वह सम्पूर्ण दुःखों एवं मलिनताओं से युक्त होकर संसार में ही भटकता रहता है।

मंत्र (गुरुमंत्र) के सिद्ध हो जाने पर सभी प्रकार की सिद्धियाँ फलित हो जाती हैं और गुरुकृपा से उस परम तत्त्व को प्राप्त करके मनुष्य महात्मा हो जाता है।

जिस प्रकार शिष्य के द्वारा की गयी सेवा से संतुष्ट होकर प्रसन्न हुए गुरुदेव उसे वरदान देते हैं, उसी प्रकार शिष्य को भी धनों एवं प्राणों से यत्नपूर्वक गुरुदेव को संतुष्ट करना चाहिए।

(यहाँ प्राणसहित सेवा का अर्थ वह सेवा है जिसमें किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प आदि बाकी न रहे - पूर्ण समर्पण भाव से युक्त। क्योंकि देहाध्यास का मूल प्राण-संस्थान है व अंतिम ममत्व प्राणों का ही होता है। अतः श्रीगुरुचरणों में पूर्ण देहाध्यास-अर्पण ही प्राणसहित सेवा है।)

जब सद्गुरुदेव देश-काल से परे अपना आत्मतत्त्व शिष्य को दे देते हैं (अर्थात् शिष्य को आत्मज्ञान करा देते हैं), तब वह मुक्त हो जाता है और उसका संसार में पुनर्गमन नहीं होता।

शिष्य को उसी प्रकार गुरु की आराधना करनी चाहिए जिस प्रकार करने से गुरु प्रसन्न होते हों। गुरु के प्रसन्न होने पर शिष्य के सब पाप शीघ्रता से नष्ट हो जाते हैं।

जो शिष्य मन से भी कामनाओं की आकांक्षा नहीं करते अर्थात् गुरुदेव से किसी भी प्रकार की इच्छापूर्ति की अपेक्षा नहीं रखते, उनकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति भक्तवत्सल स्वामी (श्रीगुरुदेव) स्वयं ही कर देते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता तथा अन्य मुनिजन मनुष्य पर अनुग्रह करनेवाले हैं, लेकिन गुरुदेव के संतुष्ट हो जाने पर अन्य किसीकी संतुष्टि में संदेह नहीं रह जाता।

शिष्य की गुरुभक्ति से संतुष्ट हुए कृपालु गुरु के द्वारा जो शिष्य संतुष्ट (तृप्त) हो जाता है, कर्मबंधन से मुक्त हुआ वह शिष्य भक्ति और मुक्ति - दोनों का पात्र बन जाता है।

शिष्य के द्वारा भी वैसा ही किया जाना चाहिए जैसा संतुष्ट हुए गुरुदेव के द्वारा कहा जाय। उसे मन, वाणी एवं शरीर से कर्मों को करते हुए सदैव सबका प्रिय करने में उद्यत रहना चाहिए।'' (कुलार्णव तंत्र, द्वादश उल्लास)

पंद्रहवें अध्याय का माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं : पार्वती ! गीता के पंद्रहवें अध्याय का माहात्म्य सुनो। गौड़ देश में कृपाण नरसिंह नामक एक राजा थे, जिनकी तलवार की धार से युद्ध में देवता भी परास्त हो जाते थे। उनका बुद्धिमान सेनापति शस्त्र और शास्त्र की कलाओं का भंडार था। उसका नाम था सरभमेरुंड। उसकी भुजाओं में प्रचंड बल था। एक समय उस पापी ने राजकुमारोंसहित महाराज का वध करके स्वयं ही राज्य करने का विचार किया। इस निश्चय के कुछ ही दिनों बाद वह हैजे का शिकार होकर मर गया। थोड़े समय में वह पापात्मा अपने पूर्वकर्म के कारण सिंधु देश में एक तेजस्वी घोड़ा हुआ। उसका पेट सटा हुआ था। घोड़े के लक्षणों का ठीक-ठीक ज्ञान रखनेवाले किसी वैश्यपुत्र ने बहुत-सा मूल्य देकर उस अश्व को खरीद लिया और राजा को देने के लिए राजमहल तक ले आया। द्वारपाल ने जाकर राजा को वैश्यकुमार के आगमन की सूचना दी।

राजा ने वैश्यकुमार से पूछा : ''किसलिए आये हो ?'' तब उसने उत्तर दिया : ''देव ! सिंधु देश में उत्तम लक्षणों से सम्पन्न एक अश्व था, जिसे तीनों लोकों का एक रत्न समझकर मैंने बहुत-सा मूल्य देकर खरीद लिया है।''

राजा ने आज्ञा दी : ''उस अश्व को यहाँ ले आओ।'' वास्तव में वह घोड़ा गुणों में उच्चैःश्रवा (इन्द्र का घोड़ा) के समान था। सुंदर रूप का तो मानों, घर ही था। वह शुभ लक्षणों का समुद्र जान पड़ता था। वैश्य घोड़ा ले आया और राजा ने उसे देखा। अश्व के लक्षण जाननेवाले अमात्यों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। जिसे सुनकर राजा को बड़ा आनंद हुआ और उन्होंने

वैश्य को मुँहमाँगा सुवर्ण देकर तुरंत ही उस अश्व को खरीद लिया। कुछ दिनों के बाद राजा शिकार खेलने के लिए उत्सुक हो उसी घोड़े पर चढ़कर वन में गये। वहाँ मृगों के पीछे उन्होंने अपना घोड़ा दौड़ाया। पीछे-पीछे सब ओर से दौड़कर आते हुए समस्त सैनिकों का साथ छूट गया। वे हिरनों द्वारा आकृष्ट होकर बहुत दूर निकल गये। प्यास ने उन्हें व्याकुल कर दिया। तब वे घोड़े से उतरकर जल की खोज करने लगे। घोड़े को उन्होंने वृक्ष के तने से बाँध दिया और स्वयं एक चट्टान पर चढ़ने लगे। कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा कि एक पत्ते का टुकड़ा हवा से उड़कर शिलाखंड पर गिरा है। उसमें गीता के पंद्रहवें अध्याय का आधा श्लोक लिखा हुआ था। राजा उसे पढ़ने लगे। उनके मुख से गीता के अक्षर सुनकर घोड़ा तुरंत गिर पड़ा और अश्व-शरीर छोड़कर तुरंत ही दिव्य विमान पर बैठ स्वर्गलोक को चला गया। तत्पश्चात् राजा ने पहाड़ पर चढ़कर एक उत्तम आश्रम देखा, जहाँ नागकेशर, केले, आम और नारियल के वृक्ष लहलहा रहे थे। आश्रम के भीतर विष्णुशर्मा नामक एक ब्राह्मण बैठे हुए थे, जो संसार की वासनाओं से मुक्त थे। राजा ने उन्हें प्रणाम करके बड़ी भक्ति के साथ पूछा : ''ब्रह्मन्! मेरा अश्व अभी-अभी शरीर छोड़कर स्वर्ग को चला गया है, उसका क्या कारण है ?''

राजा की बात सुनकर त्रिकालदर्शी, मंत्रवेत्ता और महापुरुषों में श्रेष्ठ उस ब्राह्मण ने कहा : ''राजन्! पूर्वकाल में तुम्हारे यहाँ जो सरभमेरुंड नामक सेनापति था, वह तुम्हें पुत्रोंसहित मारकर स्वयं राज्य हड़प लेने को तैयार था। इसी बीच में हैजे का शिकार होकर वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। उसके बाद वह उसी पाप से घोड़ा हुआ था। यहाँ कहीं तुम्हें गीता के पंद्रहवें अध्याय का आधा श्लोक लिखा मिल गया, जिसे तुम पढ़ने लगे। उसीको तुम्हारे मुख से सुनकर वह अश्व स्वर्ग को प्राप्त हुआ है।''

तदनंतर राजा के पार्श्ववर्ती सैनिक उन्हें ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन सबके साथ ब्राह्मण को प्रणाम करके राजा प्रसन्नतापूर्वक वहाँ से चले और गीता के पंद्रहवें अध्याय के श्लोकाक्षरों से अंकित उसी पत्र को पढ़-पढ़कर प्रसन्न होने लगे। उनके नेत्र हर्ष से खिल उठे थे। घर आकर उन्होंने मंत्रवेत्ता मंत्रियों के सहयोग से अपने पुत्र सिंहबल को राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया और स्वयं पंद्रहवें अध्याय के जप से विशुद्धचित्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लिया। ('पद्म पुराण' से)

गीता के पंद्रहवें अध्याय के कुछ श्लोक

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥

इस संसारवृक्ष का स्वरूप जैसा कहा है वैसा यहाँ विचारकाल में नहीं पाया जाता, क्योंकि न तो इसका आदि है और न अंत है तथा न इसकी अच्छी प्रकार से स्थिति ही है। इसलिए इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को वैराग्यरूप शस्त्र द्वारा काटकर उसके पश्चात् उस परम-पदरूप परमेश्वर को भलीभाँति खोजना चाहिए, जिसमें गये हुए पुरुष फिर लौटकर संसार में नहीं आते और जिस परमेश्वर से इस पुरातन संसारवृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, उसी आदिपुरुष नारायण के मैं शरण हूँ - इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उस परमेश्वर का मनन और निदिध्यासन करना चाहिए। (३,४)

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है और वही इस प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है। (७)

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥

यत्न करनेवाले योगीजन अपने हृदय में स्थित इस आत्मा को तत्त्व से जानते हैं किंतु जिन्होंने अपने अंतःकरण को शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते रहने पर भी इस आत्मा को नहीं जानते। (११)

मन की पाँच दशाएँ

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

मन की पाँच दशाएँ होती हैं :

एक होता है मुर्दा मन। 'अरे, इन साधु बाबाओं को बोलने दो, शास्त्रों में लिखा हुआ वहीं रहने दो। खाओ-पीयो और मौज करो।' न धर्म न कर्म, न माता न पिता - किसीकी फिक्र नहीं। यह है मुर्दा मन, जिसमें लोक-परलोक विषयक सूझबूझ की कोई चेतना नहीं होती।

दूसरा है रोगी मन। ऐसे मनवाला मित्र से कहेगा : 'क्या करूँ यार! पान-मसाला, व्यसन या अपनी गंदी आदत छोड़ना तो चाहता हूँ किंतु क्या करूँ... ?' पत्नी से भी कहेगा कि 'मैं भी चाहता हूँ कि व्यसन न करूँ किंतु...' पत्नी कहेगी : 'रोज ऐसा कहते हो।' यह रोगी मन की पहचान है।

चाहते हैं कि यह नहीं करें, फिर भी हो जाता है क्योंकि जीवन में व्रत नहीं है। व्रत नहीं है तो आरोग्यता कैसे आयेगी ?

तीसरा होता है अचेत मन। ऐसे मन का व्यक्ति जिसने जैसे संस्कार डाल दिये बस, वैसा ही चलता रहता है। जैसा माहौल मिल गया, वैसे ही चल पड़े... अपनी कोई सूझबूझ नहीं कि यह संग अच्छा है कि बुरा, यह करना ठीक है कि नहीं, यह है अचेत मन। दूरदर्शन पर विज्ञापन देखा और वह वस्तु ले आये। अरे, विज्ञापन देनेवाले उसके पीछे लाखों रुपये खर्च कर रहे हैं तो तुमसे करोड़ों कमाने के लिए ही कर रहे हैं, लेकिन लोग विज्ञापन देखकर ८ रुपये किलोवाला नमक ले रहे हैं! जबकि १०-१२ पैसे का किलोभर नमक मिलता है। पिसाई वगैरह कराके भी २० पैसे का पड़ेगा। मुझे बताया गया कि 'बापूजी! आजकल नमक १०० रुपये टन है। कभी १०० तो कभी ११० रुपये हो जाता है।' १०० रुपये का हजार किलो तो १० पैसे का एक किलो हुआ। १०-१२-१५ पैसे किलो से ज्यादा महँगा तो कभी होता नहीं। लेकिन अपने परिवार की कमाई कितनी है और घरवालों की क्या हालत है? - यह नहीं देखते और लुभावनी वस्तुएँ ले आते हैं। देखा कि फास्टफूड, साबुन या कपड़े धोने का पाउडर सुगंधित है और बस, ले आये। विज्ञापन करनेवाले कलाकार को तो ५० हजार या लाख रुपये मिल गये किंतु गृहिणियों की जेबें खाली... गृहपतियों की जेबें खाली! ऐसे अचेत मन के लोग बहुत हैं आजकल।

चौथा होता है उलटा मन। कई बार संसार-व्यवहार किया, नसीहत भी मिली कि यह अच्छा नहीं है, फिर भी **'सौ-सौ जूते खायें तमाशा घुस के देखेंगे।'** २० दिन पहले देखा कि इसमें कोई सार नहीं, फिर भी किये जा रहे हैं... थोड़ा समय पहले बीड़ी-सिगरेट, पान-मसाला लेकर देखा, लेकिन फिर से वही करेंगे।

पाँचवाँ होता है स्वस्थ मन। स्वस्थ मन तो बस, गाँधीजी जैसों का होता है, श्री लीलाशाहजी बापू जैसों का होता है। कबीरजी, महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, मीराबाई आदि का मन स्वस्थ मन था। रामानंद स्वामी ने दीक्षा दी और ईश्वरप्राप्ति के रास्ते चल पड़े कबीरजी। गुरु ने दीक्षा दी और चल पड़ी मीराबाई। एकदम स्वस्थ मन... एकदम साफ-सुथरा कपड़ा... लगा रंग और हो गये जगमग।

आपको निराश होने की जरूरत नहीं है। मुर्दा मन से तो आप ऊपर आये हैं। नास्तिकता से तो ऊपर आये हैं। रोगी मन से भी ऊपर आये हैं। अचेत मन से कभी ऊपर, कभी उसके साथ; उलटे मन से कभी थोड़ा ऊपर, कभी उसके साथ हो जाते हैं। यह कसरत तो होती रहेगी।

एक साल में कोई स्नातक नहीं हो जाता। इसका मतलब यह भी नहीं कि ८० साल तक तुम स्कूल-कॉलेज में ही पड़े रहो, नहीं। आगे बढ़ते रहो-बढ़ते रहो। कोई एक साल में २-२ कक्षाएँ पास कर ले, ऐसा भी हो सकता है। एक दिन में कोई महापुरुष नहीं बनता। एक दिन में कोई स्वस्थ मनवाला नहीं हो जाता। यदि ऐसा होता तो हम घर छोड़कर गये, उसके दूसरे दिन संत बन जाते... हम भी एकांत में रहे, कुछ नियमों का पालन किया, ऐसा करते-करते... **रंग लागत लागत लागत है।**

मौन की महत्ता

✻ ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ✻

मौन का अर्थ है अपनी शक्ति व्यय न करना। मनुष्य जैसे अन्य इन्द्रियों से अपनी शक्ति खर्च करता है, वैसे बोलने से भी अपनी बहुत शक्ति व्यय करता है। अन्य इन्द्रियों से शक्ति खर्च करने में मनुष्य तथा पशु-पक्षियों में समानता है अर्थात् अन्य इन्द्रियों से मनुष्य और पशु एक जैसे ही काम लेते हैं किंतु वाणी द्वारा अपनी शक्ति को अधिक-से-अधिक खर्च करनेवाला प्राणी एक मनुष्य ही है। अतः मनुष्य को अपनी शक्ति अपने भीतर एकत्रित करने के लिए मौन धारण करने की बड़ी आवश्यकता है। इससे अन्य इन्द्रियों से नष्ट होनेवाली शक्ति की भी रक्षा होती है, इसका नाम है संयम अथवा किफायत। प्रायः देखा गया है कि मनुष्य अपनी शक्ति का व्यर्थ व्यय करता है और खराब प्रयोग भी करता है। इस जगत में जो झगड़े-फसाद हो रहे हैं, वे सभी वाणी के बुरे प्रयोग से अर्थात् अनुचित प्रयोग से ही हो रहे हैं। यदि मनुष्य वाणी का सदुपयोग अर्थात् ठीक प्रयोग करेगा, मौन धारण करेगा अर्थात् उचित और पर्याप्त बोलेगा तो जगत के बहुत-से झगड़े मिट जायेंगे और लोग अधिक आनंद में रहेंगे।

मनुष्य सारा दिन जो कुछ बोलता है और जो लेख लिखता है, उसमें शांति फैलानेवाले कितने और अशांति पैदा करनेवाले कितने होते हैं, इस पर विचार करने से मौन धारण करने की महिमा ध्यान में आ सकती है।

मौन धारण करने से मन को अपने वश में करने में भी बड़ी सहायता मिलती है। मन को स्थिर करने के लिए मौन बड़ा सहायक होता है।

वास्तव में मौन सरलता से साधा जा सकता है, किंतु लोगों को बोलने की इतनी आदत पड़ गयी है कि आसानी से साधा जानेवाला मौन भी असाध्य मालूम होता है। इसलिए थोड़ा बोलना अथवा कुछ समय तक मौन धारण करना आवश्यक है।

आजकल देखोगे तो छोटे बालक तथा बालिकाएँ भी कितना वाद-विवाद करते हैं। उन्हें इसकी पहचान ही नहीं है कि हम क्या बोलते हैं अथवा हमें जो कुछ बोलना है, उससे अधिक तो नहीं बोलते और जो कुछ बोलते हैं वह ऐसा तो नहीं है, जो दूसरे को अच्छा न लगे या दूसरे के मन में दुःख उत्पन्न करे। सदैव सोच-समझकर बोलना चाहिए, नहीं तो शांत रहना चाहिए। बुद्धिमान मनुष्य वह है जो सदैव बोलने से पहले सोचता है, किंतु मूर्ख मनुष्य सदैव बोलकर पीछे सोचता है कि 'मैंने ये शब्द दूसरे को व्यर्थ में क्यों कहे ?'

कहते हैं कि तलवार का घाव तो भर जाता है, किंतु जीभ से कड़वे शब्द कहने पर जो घाव होता है, वह मिटनेवाला नहीं है। इसलिए जितना हो सके उतना मौन रहना चाहिए।

व्यर्थ वाद-विवाद न करो। अधिक बोलना उचित नहीं है।

वाद विवाद काहू से न कीजिये।
रसना राम अमृत रस पीजिये ॥

दीपक जलता है तो बत्ती और तेल जलता है। इसी तरह जितना अधिक बोला जाता है, अंदर की शक्ति उतनी ही नष्ट होती है। अतः महात्मा गाँधी प्रति सोमवार को मौनव्रत रखते थे। मौन धारण करने की बड़ी महिमा है। इसे धारण करोगे तो बहुत लाभ प्राप्त करोगे।

तोता हरे रंग का होता है। वह पेड़ पर छिपा बैठा रहता है तो चिड़ीमार (शिकारी) को पता ही नहीं चलता, लेकिन जब 'टां-टां' करता है तब तत्काल चिड़ीमार की उस पर दृष्टि पड़ती है और वह उसे पकड़ लेता है। इससे प्रकट है कि जब तक वह शांत था तब तक आनंद में मग्न था, लेकिन जब बोला तब

पकड़ा गया।

मनुष्य में सहस्र दोष क्यों न हों, किंतु शांत बैठने से वे ढके रहते हैं। इसलिए हे प्यारे ! एक बार शांति का आनंद भी लेकर देखो।

*

मौन से शक्तिसंचय

जब महाभारत का अंतिम श्लोक महर्षि वेदव्यासजी के मुखारविंद से निःसृत होकर गणेशजी के सुपाठ्य अक्षरों में भोजपत्र पर अंकित हो चुका, तब वेदव्यासजी ने गणेशजी से कहा : ''हे विघ्नविनाशक ! धन्य है आपकी लेखनी ! महाभारत का सृजन तो वस्तुतः आपने किया है परंतु एक वस्तु आपकी लेखनी से भी अधिक विस्मयकारी है, वह है आपका मौन। सुदीर्घ काल तक आपका-हमारा साथ रहा। इस अवधि में मैंने तो १५-२० लाख शब्द बोल दिये, परंतु आपके मुख से एक भी शब्द नहीं सुना।''

इस पर गणेशजी ने मौन की महिमा का बखान करते हुए कहा : ''बादरायणजी ! किसी दीपक में अधिक तेल होता है किसीमें कम, परंतु तेल का अक्षय भंडार किसी भी दीपक में नहीं होता। उसी प्रकार देव, दानव, मानव आदि जितने भी तनधारी हैं, सबकी प्राणशक्ति सीमित है। किसीकी कम है, किसीकी कुछ अधिक परंतु असीम किसीकी भी नहीं है। इस प्राणशक्ति का पूर्णतम लाभ वही उठा सकता है, जो संयम से इसका उपयोग करता है। संयम ही समस्त सिद्धियों का आधार है और संयम का प्रथम सोपान है वाक्संयम अर्थात् मौन। जो वाणी का संयम नहीं करता, उसकी जिह्वा अनावश्यक बोलती रहती है और अनावश्यक शब्द प्रायः विग्रह एवं वैमनस्य उत्पन्न करते हैं, जो हमारी प्राणशक्ति को सोख लेते हैं।''

स्वयं भगवान शिव भी अधिकतर एकांत में समाधिस्थ रहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण १३ वर्षों तक घोर अंगिरस ऋषि के आश्रम में मौन का अवलम्बन लेकर एकांतवास में रहे। उसके बाद युद्ध के मैदान में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को उपनिषदों के साररूप में जो कुछ कहा गया, उससे 'श्रीमद्भगवद्गीता' का प्राकट्य हुआ।

रमण महर्षि ५३ वर्षों तक अरुणाचलम् में रहे। इस बीच उन्होंने अनेकों वर्ष एकांत में मौन रहकर व्यतीत किये तथा समाधि में निमग्न रहे। पूज्य बापूजी भी ७ वर्षों तक एकांतवास में रहे और अभी भी कभी-कभी एकांतवास में चले जाते हैं।

'छांदोग्य उपनिषद्' के अनुसार वाणी तेजोमय है। वाणी का निर्माण अग्नि के स्थूल भाग, हड्डी के मध्य भाग तथा मज्जा के सूक्ष्म भाग से होता है। अतः वाणी बड़ी शक्तिशाली है।

मौन से शक्ति की सुरक्षा, संकल्पबल में वृद्धि तथा वाणी के आवेगों पर नियंत्रण होता है। सत्य के अभ्यास तथा क्रोध के दमन में मौन बहुत ही सहायक है। मौन से कलह का नाश होता है। मौन रहने से यम-नियम, तितिक्षा, उपरति आदि सद्गुण अपने-आप आने लगते हैं।

मौन का अभ्यास और उपवास रोग तथा थकान को मिटा देते हैं। पीड़ा के समय मौन रखने से मन को शांति मिलती है। इससे मानसिक तनाव दूर होते हैं। शारीरिक तथा मानसिक कार्यक्षमता बढ़ जाती है। मस्तिष्क व स्नायुओं को विश्रांति मिलती है। भोजन सदैव मौन होकर करना चाहिए।

'हूँ... हूँ... हूँ...' करके बोलना तो बोलने से भी बुरा है, इससे तो शक्ति का अधिक अपव्यय होता है।

बोलने से व्यक्ति बलात् चंचल बनता है। मौन से चंचलता मिटती है। जो पतंगे की तरह इधर-उधर भटकते रहते हैं एवं व्यर्थ की बकबक करते रहते हैं, उनके चित्त में न शांति होती है न क्षमा, न विचारशक्ति होती है न ही अनुमान शक्ति। वैखरी वाणी और मन की कल्पनाएँ शक्ति को क्षीण करती हैं और बुद्धि को ब्रह्मज्ञान में टिकने नहीं देतीं।

व्यर्थ बकवास में शक्ति का अपव्यय होता है। यदि मौन के द्वारा अपनी शक्ति को सुरक्षित रखा जाय तो वह ओज में बदलकर ध्यान में सहायक होगी।

रोज संकल्प करें कि 'बिनजरूरी नहीं बोलूँगा, जितना हो सके कम बोलूँगा, मौन रहूँगा।' अधिक न हो सके तो सप्ताह में एक दिन मौन अवश्य रखना चाहिए।

*

हे मेरे साधक...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

गुरुदेव कह रहे हैं : ''हे जीव ! हे वत्स ! अब तू तेरे निज शिव-स्वभाव की ओर आ जा। अब तू प्रगति कर। ऊपर उठ। कब तक प्रकृति, जन्म-मृत्यु और दुःखों की गुलामी करता रहेगा ?

गुरुपूर्णिमा का यह उत्सव उत्थान के लिए आयोजित किया गया है। तू विलंब किये बिना इस उत्सव में आकर अत्यंत आनंदपूर्वक भाग ले। आ जा... आ जा... तू तेरे अपने सिंहासन पर आकर बैठ जा। साधक कोई डरपोक सियार या गरीब बकरी नहीं है। साधक तो सिंह है, सिंह ! आध्यात्मिक सत्संग में उमंगपूर्वक आनेवाले साधक के लिए तो गुरु का हृदय ही सिंहासन है। उस सिंहासन पर तू आरूढ़ हो। तू अपनी महिमा में आ जा। तू आ जा अपने आत्मभाव में...

वत्स ! तू तेरे उत्कृष्ट जीवन में ऊपर उठता जा। प्रगति के सोपान एक के बाद एक तय करता जा। दृढ़ निश्चय कर कि 'अब अपना जीवन दिव्यता की तरफ लाऊँगा।' लघु को गुरु बना देना, छोटे को बड़ा बना देना, वामन को विराट बना देना, जीव को शिव के साथ एकाकार कर देना - यही गुरुपूर्णिमा का उद्देश्य है।''

दया के सागर, कृपासिंधु वेदव्यासजी को हम नतमस्तक होकर प्रणाम करते हैं। ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुओं को हम व्यास कहते हैं। उन्होंने मानव-जाति का परम हित करने के लिए ऐश-आराम, खानपान सबका त्याग करके जीवनदाता के साथ एकत्व साधा और जीवन के सभी पहलुओं को देख लिया। उन्होंने जीवन का उज्ज्वल पक्ष भी देखा और अंधकारमय पक्ष भी देखा। आसुरी भावों को भी देखा, सात्त्विक भावों को भी देखा और इन दोनों भावों को सत्ता देनेवाले भावातीत, गुणातीत तत्त्व का भी साक्षात्कार किया। ऐसे आत्मज्ञानी महापुरुष गुरुपूर्णिमा का उत्सव हमारे लिए आयोजित करते हैं, इस पर्व पर हमें मनाते हैं।

दूसरे उत्सव तो हम मनाते हैं किंतु गुरुपूर्णिमा का पर्व हमें हमारे उत्कर्ष के लिए मनाता है।

गुरुदेव कहते हैं : ''हे बंधु ! हे साधक ! तू कब तक संसार के गंदे खेलों को खेलता रहेगा ? कब तक इन्द्रियों की गुलामी करता रहेगा ? कब तक तू इस संसार का बोझ वहन करता रहेगा ? कब तक अपने अनमोल जीवन को मेरे-तेरे के कचरे में नष्ट करता रहेगा ? जाग... जाग... जाग... अब तो जाग... अहंकार को लगा दे आग और निजस्वरूप में जाग... लगा दे विषय-विकारों को आग और निजस्वरूप में जाग। लगा दे जीवत्व को आग और शिवस्वरूप में जाग।

तू अभी जहाँ है वहीं से प्रगति कर। उठ, ऊपर उठ। जैसे वायुयान पृथ्वी को छोड़कर गगन में विहार करता है, ऐसे ही तू मन से देहाध्यास छोड़कर ब्रह्मानंद के विराट गगन में प्रवेश करता जा। ऊपर उठता जा। विशालता की तरफ आगे बढ़ता जा।

अरे ! कब तक इन जंजीरों में जकड़ा रहेगा ? जंजीर लोहे की हो या ताँबे की या फिर भले सोने की हो, परंतु जंजीर तो जंजीर है। स्वतंत्रता से वंचित रखनेवाली पराधीनता की बेड़ी ही है।

हे वत्स ! दीन-हीन बनकर कब तक गुलामी की जंजीरों में जकड़ता रहेगा ? गुलाम को स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। कल्पनाओं की जंजीरें खींचने से न टूटती हों तो ॐ की शक्तिशाली गदा मारकर इन्हें तोड़ डाल। ॐ... ॐ... ॐ...

अब जन्म-मरण के चक्कर को काट डाल। चौरासी लाख शीर्षासनों की परंपरा को तोड़ दे। तुझमें अगाध बल है, अगाध शक्ति है, अगाध वेग है, अगाध सामर्थ्य है। ॐ... ॐ... ऊपर उठता जा, आगे बढ़ता जा।''

गुरु तत्त्व की प्रेरक सत्ता में निमग्न होनेवाले

साधक, सत्‌शिष्य के अंदर गुरुवाणी का गुंजन होने लगा। अंदर से गुरुवाणी का प्रकाश प्रकट होने लगा और गुरु ने प्रेरणा दी कि 'हे वत्स ! तू जाग, जाग। लगा दे अपने बंधनों को आग। निजस्वरूप में जाग। सब चिंताओं एवं शंकाओं को छोड़ दे। इसलिए तो तुझे यह अत्यंत दुर्लभ मनुष्य-जन्म मिला है।

हे वत्स ! आ जा। मेरे राज्य में प्रेमपूर्वक पधार। मेरे इस विशाल साम्राज्य में तेरा स्नेहपूर्ण स्वागत है। मोक्ष के मार्ग पर चल। मुक्ति के धाम में आ पहुँच। आ जा स्वतंत्रता के साम्राज्य में।'

यह सचमुच में पावन उत्सव है, सुहावना उत्सव है, हमारे परम कल्याण का सामर्थ्य रखनेवाला उत्सव है। अन्य देवी-देवताओं का पूजन करने के बाद भी कोई पूजा बाकी रह जाती है, किंतु उन आत्मरामी महापुरुष की पूजा के बाद फिर कोई पूजा बाकी नहीं रहती।

हरिहर आदिक जगत में पूज्य देव जो कोय।
सद्‌गुरु की पूजा किये सबकी पूजा होय॥

दुनियाभर के काम करने के बाद भी कई काम करने बाकी रह जाते हैं। सदियों तक भी वे पूरे नहीं होते। किंतु जो ब्रह्मवेत्ता सद्‌गुरु द्वारा बताया गया काम उत्साह से करता है, उसके सब काम पूरे हो जाते हैं।

श्रुति भगवती कहती है :

स्नातं तेन सर्वं तीर्थं दातं तेन सर्वं दानम्।
कृतं तेन सर्वं यज्ञं येन क्षणं मनः ब्रह्मविचारे स्थिरं कृतम्॥

जिसने एक क्षण के लिए भी ब्रह्मवेत्ताओं के अनुभव में अपने मन को लगा दिया, उसने समस्त तीर्थों में स्नान कर लिया, सब दान दे दिये, सब यज्ञ कर लिये, सब पितरों का तर्पण कर लिया।

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १४१वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जुलाई २००४ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

सुखमय जीवन की कुंजियाँ

धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा : पितामह ! किस उपाय से मनुष्य अपने सम्पूर्ण आयुष्य तक जीवित रहता है ? क्या वजह है कि उसकी आयु कम हो जाती है ? मनुष्य मन, वाणी अथवा शरीर के द्वारा किन साधनों का आश्रय ले, जिससे उसका भला हो ?

भीष्मजी बोले : युधिष्ठिर ! सदाचार से मनुष्य को आयु, लक्ष्मी तथा इस लोक और परलोक में कीर्ति की प्राप्ति होती है। दुराचारी मनुष्य इस संसार में बड़ी आयु नहीं पाता, अतः मनुष्य यदि अपना कल्याण करना चाहता हो तो उसे सदाचार का पालन करना चाहिए। कितना ही बड़ा पापी क्यों न हो, सदाचार उसकी बुरी प्रवृत्तियों को दबा देता है। सदाचार धर्मनिष्ठ तथा सच्चरित्रवान पुरुषों का लक्षण है।

सदाचार ही कल्याण का जनक और कीर्ति को बढ़ानेवाला है, उसीसे आयु की वृद्धि होती है और वही बुरे लक्षणों का नाश करता है। सम्पूर्ण आगमों में सदाचार ही श्रेष्ठ बतलाया गया है। सदाचार से धर्म उत्पन्न होता है और धर्म के प्रभाव से आयु की वृद्धि होती है।

जो मनुष्य धर्म का आचरण करते हैं और लोक कल्याणकारी कार्य में लगे रहते हैं, उनके दर्शन न हुए हों तो भी केवल नाम सुनकर मानव-समुदाय उनसे प्रेम करने लगता है। जो मनुष्य नास्तिक, क्रियाहीन, गुरु और शास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले, धर्म को न जाननेवाले, दुराचारी, शीलहीन, धर्म की मर्यादा को भंग करनेवाले तथा दूसरे वर्ण की स्त्रियों से संपर्क रखनेवाले हैं वे इस लोक में अल्पायु होते हैं और मरने

के बाद नरक में पड़ते हैं। जो सदैव अशुद्ध व चंचल रहता है, नख चबाता है, उसे दीर्घायु नहीं प्राप्त होती। ईर्ष्या करने से आयु क्षीण होती है। **सूर्योदय के समय और दिन में सोने से आयु क्षीण होती है।** जो सदाचारी, श्रद्धालु, ईर्ष्यारहित, क्रोधहीन, सत्यवादी, हिंसा न करनेवाला, दोषदृष्टि से रहित और कपटशून्य है, उसे दीर्घायु प्राप्त होती है।

प्रतिदिन सूर्योदय से एक घंटा पहले जागकर मनुष्य धर्म और अर्थ के विषय में विचार करे। **सूर्योदय होने तक कभी न सोये, यदि किसी दिन ऐसा हो जाय तो प्रायश्चित करे, गायत्री मंत्र का जप करे, उपवास करे या फलादि पर ही रहे।** मौन रहकर नित्य दंतधावन करे। फिर स्नानादि से निवृत्त होकर प्रातःकालीन संध्या करे। दंतधावन किये बिना देवपूजा व संध्या न करे। देवपूजा व संध्या किये बिना गुरु, वृद्ध, धार्मिक, विद्वान पुरुष को छोड़कर दूसरे किसीके पास न जाय। सर्वप्रथम माता-पिता, आचार्य तथा गुरुजनों को प्रणाम करे।

जो प्रातःकाल की संध्या करके सूर्य के सम्मुख खड़ा होता है, उसे समस्त तीर्थों में स्नान करने का फल मिलता है और वह सब पापों से छुटकारा पा जाता है।

सूर्योदय के समय ताँबे के लोटे में जल लेकर सूर्यनारायण को अर्घ्य देना चाहिए। इस समय आँखें बंद करके भ्रूमध्य में सूर्य की भावना करनी चाहिए। सूर्यास्त के समय भी मौन होकर संध्योपासना करनी चाहिए। संध्योपासना के अंतर्गत शुद्ध व स्वच्छ वातावरण में प्राणायाम व जप किये जाते हैं। नियमित त्रिकाल संध्या करनेवाले को रोजी-रोटी के लिए कभी हाथ फैलाना नहीं पड़ता - ऐसा शास्त्रवचन है। ऋषि लोग प्रतिदिन संध्योपासना करने से ही दीर्घजीवी हुए हैं।

उदय, अस्त, ग्रहण और मध्याह्न के समय सूर्य की ओर कभी न देखे, जल में भी उसका प्रतिबिम्ब न देखे।

वृद्ध पुरुषों के आने पर तरुण पुरुष के प्राण ऊपर की ओर उठने लगते हैं। ऐसी दशा में जब वह खड़ा होकर स्वागत और प्रणाम करता है तो वे प्राण पुनः पूर्वावस्था में आ जाते हैं।

परस्त्री-सेवन से मनुष्य की आयु जल्दी ही समाप्त हो जाती है। इसलिए किसी भी वर्ण के पुरुष को परायी स्त्री से संसर्ग नहीं करना चाहिए। इसके समान आयु को नष्ट करनेवाला संसार में दूसरा कोई कार्य नहीं है। स्त्रियों के शरीर में जितने रोमकूप होते हैं उतने ही हजार वर्षों तक व्यभिचारी पुरुषों को नरक में रहना पड़ता है। रजस्वला स्त्री के साथ कभी बातचीत न करे।

अमावस्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी और अष्टमी तिथि को स्त्री-समागम न करे। अपनी पत्नी के साथ भी दिन में तथा ऋतुकाल के अतिरिक्त समय में समागम न करे। सभी पर्वों के समय ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक है। इससे आयु की वृद्धि होती है। यदि पत्नी रजस्वला हो तो उसके पास न जाय तथा उसे भी अपने निकट न बुलाये। शास्त्र की अवज्ञा करने से गृहस्थी अधिक समय तक सुखी जीवन नहीं जी सकते।

दूसरों की निंदा, बदनामी और चुगली न करे, औरों को नीचा न दिखाये। निंदा करना अधर्म बताया गया है, इसलिए दूसरों की और अपनी भी निंदा नहीं करनी चाहिए। क्रूरताभरी बात न बोले। **जिसके कहने से दूसरों को उद्वेग होता हो, वह रुखाई से भरी हुई बात नरक में ले जानेवाली होती है, उसे कभी मुँह से न निकाले।** बाणों से बिंधा हुआ और फरसे से काटा हुआ वन पुनः अंकुरित हो जाता है, किंतु दुर्वचनरूपी शस्त्र से किया हुआ भयंकर घाव कभी नहीं भरता।

हीनांग (अंधे, काने आदि), अधिकांग (छाँगुर आदि), अनपढ़, निंदित, कुरूप, धनहीन और असत्यवादी मनुष्यों की खिल्ली नहीं उड़ानी चाहिए।

नास्तिकता, वेदों की निंदा, देवताओं के प्रति अनुचित आक्षेप, द्वेष, उद्दंडता और कठोरता - इन दुर्गुणों का त्याग कर देना चाहिए।

मल-मूत्र त्यागने व रास्ता चलने के बाद तथा स्वाध्याय व भोजन के पहले पैर धो लेने चाहिए। भीगे पैर भोजन तो करे परंतु शयन न करे। भीगे पैर भोजन करनेवाला मनुष्य लम्बे समय तक जीवन धारण करता है।

परोसे हुए अन्न की निंदा नहीं करनी चाहिए। मौन होकर एकाग्रचित्त से भोजन करना चाहिए। **भोजनकाल में यह अन्न पचेगा या नहीं, इस प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए। भोजन के बाद मन-ही-मन अग्नि का ध्यान करना चाहिए।** भोजन के अंत में दही नहीं, मट्ठा पीना चाहिए तथा एक हाथ से दाहिने पैर के अँगूठे पर जल डाले फिर जल से आँख, नाक, कान व नाभि का स्पर्श करे।

पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण की ओर मुख करके भोजन करने से क्रमशः दीर्घायु, धन, सत्य और यश की प्राप्ति होती है। भूमि पर बैठकर ही भोजन करे, चलते-फिरते कभी न करे। किसीके साथ एक पात्र में तथा अपवित्र मनुष्य के निकट बैठकर भोजन करना निषिद्ध है।

जिसको रजस्वला स्त्री ने छू दिया हो तथा जिसमें से सार निकाल लिया गया हो, ऐसा अन्न कदापि न खाये। सत्पुरुषों के सामने बैठकर भोजन न करे। रात को दही और सत्तू न खाये। सावधानी के साथ केवल सवेरे और शाम को ही भोजन करे, बीच में कुछ भी खाना उचित नहीं है। भोजन के समय मौन रहना और आसन पर बैठना उचित है। निषिद्ध पदार्थ न खाये।

रात्रि के समय खूब डटकर भोजन न करे, दिन में भी उचित मात्रा में सेवन करे। तिल की चिकी, गज़क और तिल के बने पदार्थ भारी होते हैं। इनको पचाने में जीवनशक्ति अधिक खर्च होती है इसलिए ये स्वास्थ्य के लिए उचित नहीं हैं।

जूठे मुँह पढ़ना-पढ़ाना, शयन करना, मस्तक का स्पर्श करना कदापि उचित नहीं है।

यमराज कहते हैं : ''जो मनुष्य जूठे मुँह उठकर दौड़ता और स्वाध्याय करता है, मैं उसकी आयु नष्ट कर देता हूँ। उसकी संतानों को भी उससे छीन लेता हूँ। जो अनध्याय के समय भी अध्ययन करता है उसके वैदिक ज्ञान और आयु का नाश हो जाता है।''

भोजन करके हाथ-मुँह धोये बिना; सूर्य, चंद्र, नक्षत्र इन त्रिविध तेजों की ओर कभी दृष्टि नहीं डालनी चाहिए।

मलिन दर्पण में मुँह न देखे। उत्तर या पश्चिम की ओर सिर करके कभी न सोये, केवल पूर्व या दक्षिण दिशा की ओर ही सिर करके सोये।

नास्तिक मनुष्यों के साथ कोई प्रतिज्ञा न करे। आसन को पैर से खींचकर या फटे हुए आसन पर न बैठे। रात्रि में स्नान न करे। स्नान के पश्चात् तेल आदि की मालिश न करे। भीगे कपड़े न पहने।

गुरु के साथ कभी हठ नहीं ठानना चाहिए। गुरु प्रतिकूल बर्ताव करते हों तो भी उनके प्रति अच्छा बर्ताव करना ही उचित है। गुरु की निंदा मनुष्य की आयु नष्ट कर देती है। महात्माओं की निंदा से मनुष्य का अकल्याण होता है।

सिर पर तेल लगाने के बाद उसी हाथ से दूसरे अंगों का स्पर्श नहीं करना चाहिए। **दूसरे के पहने हुए कपड़े, जूते आदि न पहने।**

शयन, भ्रमण तथा पूजा के लिए अलग-अलग वस्त्र रखे। सोने की माला कभी भी पहनने से अशुद्ध नहीं होती।

संध्याकाल में नींद, स्नान, अध्ययन और भोजन करना निषिद्ध है। उस समय शुद्धचित्त होकर ध्यान करने के सिवा और कोई काम न करे। **पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके हजामत बनवानी चाहिए।** इससे आयु की वृद्धि होती है। हजामत बनवाकर बिना नहाये रहना आयु की हानि करनेवाला है।

जिसके गोत्र और प्रवर अपने ही समान हों तथा जो नाना के कुल में उत्पन्न हुई हो, जिसके कुल का पता न हो, उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिए। अपने से श्रेष्ठ या समान कुल में विवाह करना चाहिए।

तुम सदा उद्योगी बने रहो, क्योंकि उद्योगी मनुष्य ही सुखी और उन्नतिशील होता है। प्रतिदिन पुराण, इतिहास, उपाख्यान तथा महात्माओं के जीवनचरित्र का श्रवण करना चाहिए। इन सब बातों का पालन करने से मनुष्य दीर्घजीवी होता है।

पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने सब वर्णों के लोगों पर दया करके यह उपदेश दिया था। यह यश, आयु और स्वर्ग की प्राप्ति करानेवाला तथा परम कल्याण का आधार है। *(महाभारत, अनुशासन पर्व)*

अधिक मास का माहात्म्य

[अधिक मास : १८ जुलाई से १६ अगस्त]

अधिक मास में सूर्य की संक्रांति (सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश) न होने के कारण इसे 'मलमास' (मलिन मास) कहा गया। स्वामीरहित होने से यह मलमास देव-पितर आदि की पूजा तथा मंगल कर्मों के लिए त्याज्य माना गया। इससे लोग इसकी घोर निंदा करने लगे। इस प्रकार की लोक-भर्त्सना से चिंतातुर हो, अपार दुःख-समुद्र में निमग्न होकर यह भगवान विष्णु की शरण में गया।

मलमास को शरणागत देख भगवान विष्णु उसकी दयनीय दशा से चिंतित हो गये व उसे गोलोक में ले गये, जहाँ भगवान श्रीकृष्ण विराजमान थे। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण से कहा : ''अधिक मास मलिन होने से सबने इसकी घोर निंदा की है। हृषीकेश ! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इसके महान क्लेश का निवारण नहीं कर सकता। अतः इसे दुःख-संताप की पीड़ा से कृपया मुक्त कीजिये।''

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : ''विष्णो ! मैं इसे सर्वोपरि - अपने तुल्य करता हूँ।

सद्‌गुण, कीर्ति, प्रभाव, षडैश्वर्य, पराक्रम, भक्तों को वरदान देने का सामर्थ्य आदि जितने गुण मुझमें हैं, उन सबको आज से मैंने मलमास को सौंप दिया।

अहमेते यथा लोके प्रथितः पुरुषोत्तमः।
तथायमपि लोकेषु प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

उन गुणों के कारण जिस प्रकार मैं वेदों, लोकों और शास्त्रों में 'पुरुषोत्तम' नाम से विख्यात हूँ, उसी प्रकार आज से यह मलमास भी भूतल पर 'पुरुषोत्तम' नाम से प्रसिद्ध होगा और मैं स्वयं इसका स्वामी हो गया हूँ।

जिस परम धाम - गोलोक में पहुँचने के लिए मुनि-महर्षि कठोर तपस्या में निरंतर रत रहते हैं, वही दुर्लभ पद पुरुषोत्तम मास में स्नान, पूजादि अनुष्ठान करनेवाले भक्तजनों को सुगमता से प्राप्त हो सकेगा।

आज से संसार के सभी प्राणी मेरी आज्ञानुसार मेरे तुल्य पुरुषोत्तम मास की पूजा सदैव करते रहेंगे। यह सर्वश्रेष्ठ मास के रूप में विख्यात होगा।''

इस प्रकार अधिक मास भगवान श्रीकृष्ण से वर प्राप्त करके पुरुषोत्तम मास के नाम से विख्यात हुआ।

चतुर्मास में इस मास को अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसलिए इस मास में प्रातः स्नान, दान, तप, नियम, धर्म, पुण्यकर्म, व्रत-उपासना तथा निःस्वार्थ नाम जप-गुरुमंत्र जप का अधिक महत्त्व है।

इस महीने में दीपकों का दान करने से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। दुःख-शोकों का नाश होता है। वंशदीप बढ़ता है, ऊँचा सान्निध्य मिलता है, आयु बढ़ती है।

इस मास में आँवले और तिल का उबटन शरीर पर मलकर स्नान करना और आँवले के पेड़ के नीचे भोजन करना यह भगवान श्री पुरुषोत्तम को अतिशय प्रिय है, साथ ही स्वास्थ्यप्रद और प्रसन्नताप्रद भी है। यह व्रत करनेवाले लोग बहुत पुण्यवान हो जाते हैं।

अधिक मास में शादी, दीक्षाग्रहण जैसे मंगल कार्य नहीं किये जाते। इस मास में सभी मंगल कर्म वर्ज्य होने पर भी नियमित पैतृक श्राद्ध करने का विधान है। प्रत्येक वर्ष में माता-पिता की मरण तिथि पर जिस प्रकार श्राद्ध कर्म करते आ रहे हों, वैसे ही मलमास में भी वह तिथि उपस्थित होने पर श्राद्ध करना चाहिए।

अन्नं ब्रह्म रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः।

'अन्न ब्रह्म है, उसका रस विष्णु है व उसके भोक्ता भगवान शिव हैं।' इस प्रकार ध्यान करके भोजन करने से भोजन के दोष समाप्त हो जाते हैं।

चातुर्मास्य व्रत की महिमा

[चतुर्मास : २८ जून से २२ नवम्बर]

आषाढ़ के शुक्लपक्ष में एकादशी के दिन उपवास करके मनुष्य भक्तिपूर्वक चातुर्मास्य व्रत प्रारंभ करे। एक हजार अश्वमेध यज्ञ करके मनुष्य जिस फल को पाता है, वही चातुर्मास्य व्रत के अनुष्ठान से प्राप्त कर लेता है।

इन चार महीनों में ब्रह्मचर्य का पालन, त्याग, पत्तल पर भोजन, उपवास, मौन, जप, ध्यान, स्नान, दान, पुण्य आदि विशेष लाभप्रद होते हैं।

व्रतों में सबसे उत्तम व्रत है - ब्रह्मचर्य का पालन। ब्रह्मचर्य तपस्या का सार है और महान फल देनेवाला है। ब्रह्मचर्य से बढ़कर धर्म का उत्तम साधन दूसरा नहीं है। विशेषतः चतुर्मास में यह व्रत संसार में अधिक गुणकारक है।

मनुष्य सदा प्रिय वस्तु की इच्छा करता है। जो चतुर्मास में अपने प्रिय भोगों का श्रद्धा एवं प्रयत्नपूर्वक त्याग करता है, उसकी त्यागी हुई वे वस्तुएँ उसे अक्षय रूप में प्राप्त होती हैं। चतुर्मास में गुड़ का त्याग करने से मनुष्य को मधुरता की प्राप्ति होती है। ताम्बूल का त्याग करने से मनुष्य भोग-सामग्री से सम्पन्न होता है और उसका कंठ सुरीला होता है। दही छोड़नेवाले मनुष्य को गोलोक मिलता है। नमक छोड़नेवाले के सभी पूर्तकर्म (परोपकार एवं धर्म सम्बंधी कार्य) सफल होते हैं। जो मौनव्रत धारण करता है उसकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं करता।

चतुर्मास में काले एवं नीले रंग के वस्त्र त्याग देने चाहिए। नीले वस्त्र को देखने से जो दोष लगता है, उसकी शुद्धि भगवान सूर्यनारायण के दर्शन से होती है। कुसुम्भ (लाल) रंग व केसर का भी त्याग कर देना चाहिए।

आषाढ़ मास के शुक्लपक्ष की एकादशी को श्रीहरि के योगनिद्रा में प्रवृत्त हो जाने पर मनुष्य चार मास अर्थात् कार्तिक की पूर्णिमा तक भूमि पर शयन करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य बहुत-से धन से युक्त होता है और विमान प्राप्त करता है। बिना माँगे स्वतः प्राप्त हुए अन्न का भोजन करने से बावली और कुआँ बनवाने का फल प्राप्त होता है। जो भगवान जनार्दन के शयन करने पर शहद का सेवन करता है, उसे महान पाप लगता है। **चतुर्मास में अनार, नींबू, नारियल तथा मिर्च, उड़द और चने का भी त्याग करे।** जो प्राणियों की हिंसा त्यागकर द्रोह छोड़ देता है, वह भी पूर्वोक्त पुण्य का भागी होता है।

चातुर्मास्य में परनिंदा का विशेष रूप से त्याग करे। परनिंदा को सुननेवाला भी पापी होता है।

परनिन्दा महापापं परनिन्दा महाभयम्।
परनिन्दा महद्दुःखं न तस्याः पातकं परम्॥

'परनिंदा महान पाप है, परनिंदा महान भय है, परनिंदा महान दुःख है और परनिंदा से बढ़कर दूसरा कोई पातक नहीं है।'

(स्कं. पु., ब्रा. चा. मा. : ४.२५)

चतुर्मास में ताँबे के पात्र में भोजन विशेष रूप से त्याज्य है। काँसे के भी बर्तनों का त्याग करके मनुष्य अन्यान्य धातुओं के पात्रों का उपयोग करे। अगर कोई धातुपात्रों का भी त्याग करके पलाशपत्र, मदारपत्र या वटपत्र की पत्तल में भोजन करे तो इसका अनुपम फल बताया गया है। अन्य किसी प्रकार का पात्र न मिलने पर मिट्टी का पात्र ही उत्तम है अथवा स्वयं ही पलाश के पत्ते लाकर उनकी पत्तल बनाये और उससे भोजन-पात्र का कार्य ले। पलाश के पत्तों से बनी पत्तल में किया गया भोजन चान्द्रायण व्रत एवं एकादशी व्रत के समान पुण्य प्रदान करनेवाला माना गया है। इतना ही नहीं, पलाश के पत्तों में किया गया एक-एक बार का भोजन त्रिरात्र व्रत के समान पुण्यदायक और बड़े-बड़े पातकों का नाश करनेवाला बताया गया है।

प्रतिदिन एक समय भोजन करनेवाला पुरुष

अग्निष्टोम यज्ञ के फल का भागी होता है। **पंचगव्य सेवन करनेवाले मनुष्य को चान्द्रायण व्रत का फल मिलता है।** यदि धीर पुरुष चतुर्मास में नित्य परिमित अन्न का भोजन करता है तो उसके सब पातकों का नाश हो जाता है और वह वैकुंठ धाम को पाता है। चतुर्मास में केवल एक ही अन्न का भोजन करनेवाला मनुष्य रोगी नहीं होता।

जो मनुष्य चतुर्मास में केवल दूध पीकर अथवा फल खाकर रहता है, उसके सहस्रों पाप तत्काल विलीन हो जाते हैं।

पंद्रह दिन में एक दिन संपूर्ण उपवास करने से शरीर के दोष जल जाते हैं और चौदह दिनों में तैयार हुए भोजन का रस ओज में बदल जाता है। इसलिए एकादशी के उपवास की महिमा है। वैसे तो गृहस्थ को महीने में केवल शुक्लपक्ष की एकादशी रखनी चाहिए, किंतु **चतुर्मास की तो दोनों पक्षों की एकादशियाँ रखनी चाहिए।**

जो बात करते हुए भोजन करता है, उसके वार्तालाप से अन्न अशुद्ध हो जाता है। वह केवल पाप का भोजन करता है। जो मौन होकर भोजन करता है, वह कभी दुःख में नहीं पड़ता। मौन होकर भोजन करनेवाले राक्षस भी स्वर्गलोक में चले गये हैं। यदि पके हुए अन्न में कीड़े-मकोड़े पड़ जायें तो वह अशुद्ध हो जाता है। यदि मानव उस अपवित्र अन्न को खा ले तो वह दोष का भागी होता है। जो नरश्रेष्ठ प्रतिदिन 'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा' - इस प्रकार प्राणवायु को पाँच आहुतियाँ देकर मौन हो भोजन करता है, उसके पाँच पातक निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं।

चतुर्मास में जैसे भगवान विष्णु आराधनीय हैं, वैसे ही ब्राह्मण भी। भाद्रपद मास आने पर उनकी महापूजा होती है। जो चतुर्मास में भगवान विष्णु के आगे खड़ा होकर 'पुरुष सूक्त' का पाठ करता है, उसकी बुद्धि बढ़ती है ('पुरुष सूक्त' के लिए देखें 'ऋषि प्रसाद' का अगस्त २००३ का अंक)।

चतुर्मास सब गुणों से युक्त समय है। इसमें धर्मयुक्त श्रद्धा से शुभ कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए।

सत्संगे द्विजभक्तिश्च गुरुदेवाग्नितर्पणम्।
गोप्रदानं वेदपाठः सत्क्रिया सत्यभाषणम्॥
गोभक्तिर्दानभक्तिश्च सदा धर्मस्य साधनम्।

'सत्संग, भक्ति, गुरु, देवता और अग्नि का तर्पण, गोदान, वेदपाठ, सत्कर्म, सत्यभाषण, गोभक्ति और दान में प्रीति - ये सब सदा धर्म के साधन हैं।'

(स्कं. पु., ब्रा. : २.५-६)

देवशयनी एकादशी से देवउठनी एकादशी तक उक्त धर्मों का साधन एवं नियम महान फल देनेवाला है। चतुर्मास में भगवान नारायण योगनिद्रा में शयन करते हैं, इसलिए चार मास शादी-विवाह और सकाम यज्ञ नहीं होते। ये मास तपस्या करने के हैं।

चतुर्मास में योगाभ्यास करनेवाला मनुष्य ब्रह्मपद को प्राप्त होता है। 'नमो नारायणाय' का जप करने से सौ गुने फल की प्राप्ति होती है। **यदि मनुष्य चतुर्मास में भक्तिपूर्वक योग के अभ्यास में तत्पर न हुआ तो निःसंदेह उसके हाथ से अमृत का कलश गिर गया। जो मनुष्य नियम, व्रत अथवा जप के बिना चौमासा बिताता है वह मूर्ख है।**

बुद्धिमान मनुष्य को सदैव मन को संयम में रखने का प्रयत्न करना चाहिए। मन के भलीभाँति वश में होने से ही पूर्णतः ज्ञान की प्राप्ति होती है।

सत्यमेकं परो धर्मः सत्यमेकं परं तपः।
सत्यमेकं परं ज्ञानं सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः॥
धर्ममूलमहिंसा च मनसा तां च चिन्तयन्।
कर्मणा च तथा वाचा तत एतां समाचरेत्॥

'एकमात्र सत्य ही परम धर्म है। एक सत्य ही परम तप है। केवल सत्य ही परम ज्ञान है और सत्य में ही धर्म की प्रतिष्ठा है। अहिंसा धर्म का मूल है। इसलिए उस अहिंसा को मन, वाणी और क्रिया के द्वारा आचरण में लाना चाहिए।'

(स्कं. पु. ब्रा. : २.१८-१९)

चतुर्मास में विशेष रूप से जल की शुद्धि होती है। उस समय तीर्थ और नदी आदि में स्नान करने का विशेष महत्त्व है। नदियों के संगम में स्नान के पश्चात् पितरों एवं देवताओं का तर्पण करके जप,

होम आदि करने से अनंत फल की प्राप्ति होती है। ग्रहण के समय को छोड़कर रात को और संध्याकाल में स्नान न करे। गर्म जल से भी स्नान नहीं करना चाहिए। गर्म जल का त्याग कर देने से पुष्कर तीर्थ में स्नान करने का फल मिलता है।

जो मनुष्य जल में तिल और आँवले का मिश्रण अथवा बिल्वपत्र डालकर 'ॐ नमः शिवाय' का चार-पाँच बार जप करके उस जल से स्नान करता है, उसे नित्य महान पुण्य प्राप्त होता है। बिल्वपत्र से वायुप्रकोप दूर होता है और स्वास्थ्य की रक्षा होती है।

चतुर्मास में जीव-दया विशेष धर्म है। प्राणियों से द्रोह करना कभी भी धर्म नहीं माना गया है। इसलिए मनुष्यों को सर्वथा प्रयत्न करके प्राणियों के प्रति दया करनी चाहिए। जिस धर्म में दया नहीं है वह दूषित माना गया है। सब प्राणियों के प्रति आत्मभाव रखकर सबके ऊपर दया करना सनातन धर्म है, जो सब पुरुषों के द्वारा सदा सेवन करने योग्य है।

सब धर्मों में दान-धर्म की विद्वान लोग सदा प्रशंसा करते हैं। चतुर्मास में अन्न, जल, गौ का दान, प्रतिदिन वेदपाठ और हवन - ये सब महान फल देनेवाले हैं।

सद्धर्म, सत्कथा, सत्पुरुषों की सेवा, संतों के दर्शन, भगवान विष्णु का पूजन आदि सत्कर्मों में संलग्न रहना और दान में अनुराग होना - ये सब बातें चतुर्मास में दुर्लभ बतायी गयी हैं। चतुर्मास में दूध, दही, घी एवं मट्ठे का दान महाफल देनेवाला होता है। जो चतुर्मास में भगवान की प्रीति के लिए विद्या, गौ व भूमि का दान करता है, वह अपने पूर्वजों का उद्धार कर देता है। विशेषतः चतुर्मास में अग्नि में आहुति, भगवद्भक्त एवं पवित्र ब्राह्मणों को दान और गौओं की भलीभाँति सेवा, पूजा करनी चाहिए।

पितृकर्म (श्राद्ध) में सिला हुआ वस्त्र नहीं पहनना चाहिए। जिसने असत्य भाषण, क्रोध तथा पर्व के अवसर पर मैथुन का त्याग कर दिया है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है। असत्य भाषण के त्याग से मोक्ष का दरवाजा खुल जाता है। **किसी पदार्थ को उपयोग में लाने से पहले उसमें से कुछ भाग सत्पात्र ब्राह्मण को दान करना चाहिए। जो धन सत्पात्र ब्राह्मण को दिया जाता है, वह अक्षय होता है। इसी प्रकार जिसने कुछ उपयोगी वस्तुओं को चतुर्मास में त्यागने का नियम लिया हो, उसे भी वे वस्तुएँ सत्पात्र ब्राह्मण को दान करनी चाहिए। ऐसा करने से वह त्याग सफल होता है।**

चतुर्मास में जो स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है। जो एक अथवा दोनों समय पुराण सुनता है, वह पापों से मुक्त होकर भगवान विष्णु के धाम को जाता है। जो भगवान के शयन करने पर विशेषतः उनके नाम का कीर्तन और जप करता है, उसे कोटि गुना फल मिलता है।

देवशयनी एकादशी के बाद प्रतिज्ञा करना कि ''हे भगवन् ! मैं आपकी प्रसन्नता के लिए अमुक सत्कर्म करूँगा।'' और उसका पालन करना इसीको व्रत कहते हैं। यह व्रत अधिक गुणोंवाला होता है। अग्निहोत्र, भक्ति, धर्मविषयक श्रद्धा, उत्तम बुद्धि, सत्संग, सत्यभाषण, हृदय में दया, सरलता एवं कोमलता, मधुर वाणी, उत्तम चरित्र में अनुराग, वेदपाठ, चोरी का त्याग, अहिंसा, लज्जा, क्षमा, मन एवं इन्द्रियों का संयम, लोभ, क्रोध और मोह का अभाव, वैदिक कर्मों का उत्तम ज्ञान तथा भगवान को अपने चित्त का समर्पण - इन नियमों को मनुष्य अंगीकार करे और व्रत का यत्नपूर्वक पालन करे।

('पद्म पुराण' के उत्तर खंड, 'स्कंद पुराण' के ब्राह्म खंड एवं नागर खंड-उत्तरार्ध से संकलित)

*

** 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद-क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।*

** नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।*

साधन को जीवन न मानें

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

शरीर साधन है जीवन को जानने के लिए। हम साधन को जीवन मान लेते हैं और वास्तविक जीवन की खोज नहीं करते। वास्तव में हम शरीर नहीं हैं बल्कि शरीर हमारा साधन है। घर, दुकान, दफ्तर, रुपया-पैसा, कपड़ा, गहने - ये सब शरीर के साधन हैं। जब हम शरीर नहीं हैं तो उसके काम आनेवाली वस्तुएँ हमारी कैसे हो सकती हैं ?

शरीररूपी साधन हमें सदुपयोग करने के लिए मिला है। उसे सदा के लिए सँभालकर रखना संभव नहीं है। मुर्दे को फूँक मारकर उठानेवालों को भी अपना साधन - यह शरीर तो छोड़ना ही पड़ता है। चाहे औलिया हों, पीर-फकीर हों, श्रीराम या श्रीकृष्ण जैसे अवतार हों लेकिन उन्हें भी अपनी लीला अथवा समाधि के बाद शरीररूपी साधन छोड़ना ही पड़ा।

यदि हम साधनों को साधन समझें और उनका सदुपयोग करें तो सत्यस्वरूप जीवन की प्राप्ति हो जायेगी। जो साधनों को एकत्रित करके सुखी होने की कोशिश करता है, वह अपने जीवन में अशांति, भय, चिंता, शोक और मुसीबतों को बुलाता है। कई लोग 'कोई बड़ी सत्ता मिल जाय तो सुखी हो जाऊँगा... यह मिले तो सुखी हो जाऊँगा... वह मिले तो सुखी हो जाऊँगा...' इस प्रकार के ख्वाब दखते रहते हैं। लेकिन खूब साधन मिलने से वास्तविक जीवन की प्राप्ति हो जायेगी यह बात नहीं है। आपके पास जो भी साधन हैं उनका अगर ठीक ढंग से सदुपयोग करोगे तो वास्तविक जीवन की प्राप्ति हो जायेगी।

गरीब होना पाप नहीं है, कमजोर या पिछड़ा हुआ होना पाप नहीं है और धन, बल एवं सुविधाओं से सम्पन्न होना भी पाप नहीं है। बड़े-में-बड़ा पाप है मिले हुए साधन का दुरुपयोग करना। अगर इन वस्तुओं का, साधनों का सदुपयोग करें तो सत्यस्वरूप जीवन की प्राप्ति हो सकती है।

सत्यस्वरूप जीवन कोई दूर नहीं है, पराया नहीं है। कालांतर में अथवा लोकांतर में मिलेगा, ऐसा भी नहीं है। सत्यस्वरूप जीवन तुम्हारा अपना-आपा है।

चार दोस्त बगीचे में बैठे गपशप लगा रहे थे। उनमें एक सरदार, एक सिंधी, एक मारवाड़ी और एक जाट था। यदि उनमें से कोई सोचे कि 'यार ! मुझे मनुष्य का दर्शन करना है।' तो अब जाट को मनुष्य से मिलना हो तो कितनी देर लगेगी ? सरदार को मनुष्य से मिलना हो तो कितनी देर लगेगी ? सिंधी या मारवाड़ी को मनुष्य से मिलना हो तो कितनी देर लगेगी ?

सरदार पहले मनुष्य है, बाद में सरदार है। सिंधी पहले मनुष्य है, बाद में सिंधी है। ऐसे ही पहले आपका सत्यस्वरूप जीवन है, बाद में यह शरीररूपी साधन है। इतना आसान है जीवन ! इतना सरल है वह परमात्मा ! किंतु साधन को 'मैं' मानने से बुद्धि स्थूल हो गयी, समझ मोटी हो गयी इसलिए बड़े-बड़े भोग, बड़े-बड़े त्याग करने पर भी वास्तविक जीवन के दर्शन नहीं होते।

आप शरीररूपी साधन को जीवन मानते हैं, इसीलिए शरीर की सुरक्षा को अपनी सुरक्षा मानते हैं, उसके बुढ़ापे को अपना बुढ़ापा मानते हैं, उसके स्वास्थ्य को अपना स्वास्थ्य मानते हैं, उसकी बीमारी को अपनी बीमारी मानते हैं। इस प्रकार आप अपने को भूलने के काम में ही लगे रहते हैं। अपने वास्तविक स्वरूप पर अज्ञान की परतें बढ़ाते ही चले जाते हैं।

कुछ लोग बोलते हैं कि 'आप जैसा कर्म करोगे वैसा फल आपको भोगना ही पड़ेगा।' कुछ बोलते हैं कि 'यदि आप पुरुषार्थ करो तो परमात्मा तक को पा सकते हो।' इस पर आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि 'अगर कर्म का फल प्रारब्ध है तो

अपना-अपना प्रारब्ध ही भोगें, फिर हम पुरुषार्थ क्यों करें और अगर पुरुषार्थ से ही सब होता है तो प्रारब्ध को क्यों मानें ?'

भूतकाल में आपने जो पुरुषार्थ किया है उसीके फलस्वरूप आपके पास यह शरीररूपी मुख्य साधन है। अभी आप उस साधन का चाहे सदुपयोग करो या दुरुपयोग, आप पूर्ण स्वतंत्र हो। साधन का सदुपयोग करना ही पुरुषार्थ है और दुरुपयोग करना नासमझी है, अज्ञान है, पलायनवादिता है।

समझो, आप गरीब हैं तो इस मिली हुई गरीबी का भी आप सदुपयोग करो। गरीब या निर्बल मनुष्य को धैर्य बँधाने के लिए बोला जाता है : **निर्बल के बल राम।** तात्पर्य यह है कि गरीब या निर्बल के रक्षक, आधार भगवान हैं - ऐसा समझकर आप अपने को गरीब न मानें। 'मैं निर्बल हूँ लेकिन भगवान का हूँ। जब मैं भगवान का हुआ तो भगवान किसके हुए ? भगवान मेरे हुए।' ऐसा चिंतन करके भी आप साध्य की तरफ, सत्यस्वरूप की तरफ जा सकते हैं।

यदि आपने गरीबी और निर्बलता का सदुपयोग कर लिया तो आपको सत्यस्वरूप परमात्मा की सहायता मिलेगी, आनंद मिलेगा। सत्यस्वरूप का आनंद मिलेगा तो उसके आगे बाह्य गरीबी का दुःख क्या मायना रखेगा ? जब आपका यह शरीर ही सच्चा नहीं है तो इसकी बीमारी वास्तविक हो सकती है क्या ? शरीर की तंदुरुस्ती वास्तविक है क्या ? गरीबी या अमीरी वास्तविक है क्या ?

वास्तविक जीवन तो शाश्वत है, नित्य है, शुद्ध है। यदि आपने उस शाश्वत तत्त्व का चिंतन-स्मरण किया और उसके ज्ञान की तरफ दृढ़ता से लगे रहे तो समझो, आपने साधन का सदुपयोग किया। शरीर, मन, बुद्धि का सदुपयोग करने से आप सत्य को समझ जायेंगे। सत्यस्वरूप आत्मा के करीब आ जायेंगे।

यदि कोई बलवान है, सत्तावान है और अपने को निर्बल नहीं मानता है तो ठीक है। बलवान या सत्तावान होना कोई बुरा नहीं, स्वस्थ होना कोई बुरा नहीं किंतु ये भी आपके साधन हैं। इन साधनों का भी सदुपयोग करें।

अगर आपका शरीर बलवान है तो उसके बल का सदुपयोग सेवाकार्य में कर लो। ऐसे ही धन-बल को सेवाकार्य में लगा दो। मनोबल का सदुपयोग सबके हितचिंतन में कर लो। बुद्धि को 'वास्तविक जीवन क्या है ?' इसे जानने में लगा दो।

जो बलवान हैं वे शरीररूपी साधन को 'मैं' मानने की बेवकूफी छोड़ दें और उसका सदुपयोग कर लें। वैसे भी शरीर, धन आदि छोड़कर ही मरना पड़ेगा। जो मरनेवाला या नष्ट होनेवाला है, उससे ममता हटा लें और अपने सत्यस्वरूप आत्मदेव से प्रीति करें। अपने अमर आत्मस्वभाव का बार-बार सत्संग व सुमिरन करें।

*

✽ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✽

क्रोध से भिड़ो नहीं, उसे मोड़ो

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार - ये पाँच विकार जीवात्मा के बड़े शत्रु हैं। इन शत्रुओं ने जीवात्मा का आत्मिक धन लूट लिया है। इनमें से क्रोध को कैसे वश किया जाय अथवा इसके शोषण से हम कैसे बचें ? इस संदर्भ में भगवान वेदव्यासजी कहते हैं कि क्रोध से बचना है तो क्षमा के गुण को और प्रसन्नता को बढ़ाओ।

सुनी है एक कहानी :

एक बार सात्यकि, बलराम एवं श्रीकृष्ण यात्रा कर रहे थे। यात्रा करते-करते रात हुई तो उन्होंने जंगल में पड़ाव डाला और ऐसा तय किया कि दो लोग सोयें तथा एक जागकर पहरा दे क्योंकि जंगल में हिंसक प्राणियों का भय था।

पहले सात्यकि पहरा देने लगे और श्रीकृष्ण तथा बलराम सो गये। इतने में एक राक्षस आया और उसने सात्यकि को ललकारा :

''क्या खड़ा है ? कुछ दम है तो आ जा। मुझसे कुश्ती लड़।''

सात्यकि उसके साथ भिड़ गया। दोनों बहुत देर तक लड़ते रहे। सात्यकि की तो हड्डी-पसली एक हो गयी। सात्यकि का पहरा देने का समय पूरा हो गया तो वह राक्षस भी अदृश्य हो गया।

फिर बलरामजी की बारी आयी। जब बलरामजी पहरा देने लगे तो थोड़ी देर में वह राक्षस पुनः आ धमका और बोला :

''क्या चौकी करते हो ? दम है तो आ जाओ।''

बलरामजी एवं राक्षस में भी कुश्ती चल पड़ी। ऐसी कुश्ती चली कि बलरामजी की रग-रग दुखने लगी। श्रीकृष्ण का पहरा देने का समय आया तो वह राक्षस पुनः अदृश्य हो गया। बलरामजी श्रीकृष्ण को कैसे बताते कि मैं कुश्ती हारकर बैठा हूँ ?

श्रीकृष्ण पहरा देने लगे तो वह राक्षस पुनः आ खड़ा हुआ और बोला :

''क्या चौकी करते हो ?''

यह सुनकर श्रीकृष्ण खिल-खिलाकर हँस पड़े। वह राक्षस पुनः श्रीकृष्ण को उकसाने की कोशिश करने लगा तो श्रीकृष्ण पुनः हँस पड़े और बोले :

''मित्र ! तुम तो बड़ी प्यारभरी बातें करते हो !''

राक्षस : ''कैसी प्यारभरी बातें ? तुम डरपोक हो।''

श्रीकृष्ण : ''यह तो तुम भीतर से नहीं बोलते, ऊपर-ऊपर से बोल रहे हो, यह हम जानते हैं।''

जब राक्षस ने सात्यकि एवं बलरामजी को ललकारा था तो दोनों क्रोधित हो उठे थे और राक्षस भी बड़ा हो गया था, अतः उससे भिड़ते-भिड़ते दोनों थककर चूर हो गये लेकिन जब उसने श्रीकृष्ण को ललकारा तो वे हँस पड़े और हँसते-हँसते जवाब देने लगे तो राक्षस छोटा होने लगा। राक्षस ज्यों-ज्यों श्रीकृष्ण को उकसानेवाली बात करता, त्यों-त्यों श्रीकृष्ण सुनी-अनसुनी करके, उस पर प्यार की निगाह डालकर हँस देते। ऐसा करते-करते वह जब एकदम नन्हा हो गया तो श्रीकृष्ण ने उसे अपने पीताम्बर में बाँध लिया।

सुबह उठकर जब तीनों आगे की यात्रा के लिए चले तो सात्यकि ने श्रीकृष्ण के पीताम्बर में कुछ बंधा हुआ देखकर पूछा :

''यह क्या है ?''

श्रीकृष्ण : ''जिसने तुम्हारा ऐसा बुरा हाल कर दिया वही राक्षस है यह।''

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने पीताम्बर की गाँठ खोली तो वह नन्हा-सा राक्षस निकला।

सात्यकि : ''रात को जो दैत्य आया था वह तो बड़ा विशालकाय था ! इतना छोटा कैसे हो गया ?''

श्रीकृष्ण : ''यह क्रोधरूपी राक्षस है । यदि तुम क्रोध करते जाते हो तो यह बढ़ता जाता है और तुम प्रसन्नता बढ़ाते जाते हो तो यह छोटा होता जाता है। मैं इसकी बात बार-बार सुनी-अनसुनी करता गया तो यह इतना नन्हा हो गया। तुमको सीख देने के लिए ही मैंने इसे पीताम्बर के छोर में बाँध दिया था।''

...तो क्षमा, प्रसन्नता एवं विचार से व कामना और अहंकार के त्याग से क्रोध नन्हा हो जाता है।

*

वासनानिवृत्ति में ही बहादुरी है

एक बार इंद्र ने एक सुंदर, आलीशान महल बनाने के लिए विश्वकर्मा से कहा। विश्वकर्मा ने देखा कि इंद्र के पास तो सब सुविधाएँ हैं, आलीशान महल हैं फिर भी एक नये महल की अभिलाषा है। उसमें कमी रह जायेगी तो और बढ़िया महल चाहिए... इनका भी समय जायेगा और मेरा भी समय महलों का सामान जुटाने और नये-नये महल बनाने में चला जायेगा तो फिर अंतर्प्रसाद कब पायेंगे ?

तब विश्वकर्मा ब्रह्माजी के पास गये और बोले : ''इंद्र के पास स्वर्ग में इतनी सुविधाएँ हैं, सुंदर महल हैं फिर भी वे अपने भोग में और बढ़ोतरी करना चाहते हैं। उन्हें और एक नया आलीशान महल चाहिए।''

ब्रह्माजी ने कहा : ''तुम एक महल तैयार कर दो। जब तैयार हो जाय और इंद्र देखने के लिए आयें, तब महल के अंतिम कमरे में से मैं मृत्युलोक के एक वृद्ध का रूप लेकर निकलूँगा और बाकी का सब सँभाल लूँगा।''

विश्वकर्मा ने बहुत बढ़िया महल बनाया। इंद्र उसे देखने के लिए पधारे। महल देखकर वे बोल उठे : ''अहाहा... भव्य ! भव्य !''

घूमते-घूमते अंदर गये। मणियों के प्रकाश से महल जगमगा रहा था। आखिरी कमरे में क्या देखते हैं कि मृत्युलोक का एक बूढ़ा आदमी इंद्रपुरी में ! इंद्र के नये महल में ! किसीको यहाँ प्रवेश नहीं मिल सकता, फिर भी धरती का वृद्ध यहाँ ?

इंद्र ने वृद्ध से पूछा : ''आप कौन हैं ?''

''मैं कौन हूँ यह तो बता ही दूँगा किंतु आप कौन हैं ?''

''मैं देवराज इंद्र हूँ।''

इतने में वहाँ से कीड़े-मकोड़ों की कतार जाती दिखी। इंद्र ने पूछा : ''यहाँ इस नये महल में ये कीड़े-मकोड़े कैसे ?''

वृद्ध ने कहा : ''ये भी कभी इंद्र बने थे। इनको महल की वासना थी। इनकी वासना पूरी नहीं हुई, अतः अभी महल देखने आये हैं कि अच्छा बना है कि नहीं ? इनमें से कोई एक बार, कोई दो बार तो कोई तीन बार इंद्र बना था। कभी-कभी अपने पूर्वज भी कीड़े-मकोड़े बनकर घर में चक्कर मारने आते हैं।''

''वासना इतना भटकाती है ?''

''वासना का कोई अंत नहीं।''

इंद्र का विवेक जग गया और नये महल बनवाने की वासना निवृत्त हो गयी।

वासना की पूर्ति में अनेकों की पराधीनता स्वीकार करनी पड़ती है। वासनापूर्ति में अपना प्रारब्ध चाहिए, पुरुषार्थ चाहिए, वातावरण चाहिए किंतु उससे भी वासना की पूर्ति नहीं होगी बल्कि वह गहरी घुसेगी। समझो, पत्नी के साथ व्यवहार करने की वासना हुई तो क्या एक बार व्यवहार करने से पूरी हो जायेगी ? महीने-पंद्रह दिन के बाद फिर जगेगी। कोई ऐसा भोग नहीं है कि चलो, भोग लिया और जान छूटी... नहीं, प्रत्येक भोग और गहरे भोग की वासना करता है।

बहादुरी वासनापूर्ति में नहीं, वासनानिवृत्ति में है।

*

** संसार की नश्वरता देखकर, संसारियों की बेवफाई देखकर अनंत शाश्वत चैतन्यदेव में, परमात्मा में जो कूद नहीं पड़ता वह मूर्ख है।*

** ईश्वर के सिवाय अन्य तमाम सुखों के इर्द-गिर्द व्यर्थता के काँटे लगे ही रहते हैं। जरा-सा सावधान होकर सोचोगे तो यह बात समझ में आ जायेगी और तुम ईश्वर के मार्ग पर चल पड़ोगे।*

- परम पूज्य बापूजी

चरित्रबल की रक्षा करें

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

कामविकार का मन पर बड़ा घातक दुष्प्रभाव पड़ते हुए भी आज लोग चलचित्रों में, नाटकों में चोरी, डकैती, लूटपाट, प्रेमी-प्रेमिकाओं के दृश्य देखते हैं। छोटे-छोटे बच्चों के चित्त पर उन दृश्यों का बड़ा घातक असर पड़ता है।

आज से दो पीढ़ी पहले २०-२० साल के युवक-युवतियाँ जिस बात को नहीं जानते थे, उसे आज चलचित्र देखकर ११ साल के बच्चे जान जाते हैं और अपना सत्यानाश कर बैठते हैं। अखबारों में आपने पढ़ा ही होगा कि विदेश में ११ साल की लड़की और १२ साल का लड़का माँ-बाप बन गये। कितना भयंकर अनर्थ हो रहा है गंदे चलचित्रों से !

आज दादा-दादी, माता-पिता और बच्चे-बच्चियाँ - ये तीन-तीन पीढ़ियाँ साथ में बैठकर चलचित्र, टी.वी. देखती हैं। तीन-तीन पीढ़ियाँ एक साथ अपने मन को मलिन कर रही हैं। होता तो है प्लास्टिक की पट्टियाँ और कैमरे का कमाल, वास्तविकता तो कुछ होती नहीं लेकिन उन्हें देखकर लोगों के मन मलिन हो रहे हैं। इससे भारत का भविष्य खतरे में है।

भारत के भविष्य को उज्ज्वल बनाना हो तो ये तीनों पीढ़ियाँ संतों-महापुरुषों के सान्निध्य में जायें और भगवद्भजन, भगवद्ध्यान एवं भगवद्ज्ञान की महिमा को समझकर तदनुसार आचरण करें। अभिभावक अपने बच्चों को भी भगवद्भक्तों, देशभक्तों और महापुरुषों की गाथाएँ सुनाकर उनमें शुभ संस्कारों का सिंचन करें। **मनोरंजन के नाम पर जो चलचित्र दिखाये जाते हैं उनमें भी समाज में सुख-शांति और सदाचार का संदेश देनेवाली कहानियाँ दिखायें तो अच्छा है।**

आप अपनी वास्तविक गरिमा को पहचानें, सदाचार का पालन करें और महापुरुषों की बतायी हुई युक्तियों का अनुसरण करें। अपने ओज-वीर्य की रक्षा करें एवं 'युवाधन सुरक्षा' पुस्तक का अध्ययन स्वयं तो करें ही, देश के प्रत्येक युवक-युवती तक पहुँचाने का भी संकल्प करें ताकि देश का युवाधन जागरूक, संयमी एवं मजबूत हो। देश के युवक-युवतियाँ वीर और साहसी बनें, आत्मविश्वासी बनें एवं देश को पुनः गुलामी की जंजीरों में जकड़ने से बचायें। राष्ट्र के युवा वीर, साहसी एवं ओज-तेज सम्पन्न होंगे तभी देश को उन्नत कर सकेंगे। स्वयं भी गौरवपूर्ण जीवन जी सकेंगे एवं राष्ट्र को भी गौरवान्वित कर सकेंगे।

शाबाश ! भारत के नौजवानो ! शाबाश ! उठो, कमर कसो और जुट पड़ो 'युवाधन सुरक्षा अभियान' में... भारत के हर युवक-युवती तक संतों-महापुरुषों का संदेश पहुँचा दो, ताकि हर युवक ध्रुव, प्रह्लाद जैसा भक्त, एकनाथ, नानक, कबीर-सा महापुरुष अथवा शिवाजी, राणा सांगा, महाराणा प्रताप-सा वीर बन सके और हर युवती स्वयंप्रभा, गार्गी, सुलभा या मदालसा जैसी महान बन सके...

कुदरत के आखिरी नियम बहुत कठोर हैं। अंत में तुम्हारे मोह पर वे डंडा मारेंगे। अतः अभी से सावधान हो जाओ। झूठ-कपट, छल-प्रपंच को भीतर से छोड़ते जाओ। आसक्ति का आवरण धीरे-धीरे हटाते जाओ। अन्यथा अंत समय में जबरन सब छीन लिया जायेगा। लोग मोह छोड़ने की जगह पर आकर भी मोह करने लगते हैं। संत के पास आकर भी मकान-दुकान, नौकरी-धंधा माँगते हैं, आत्मज्ञान नहीं माँगते।

- परम पूज्य बापूजी

स्वामी रामतीर्थ की संयमनिष्ठा

स्वामी रामतीर्थ की ख्याति अमेरिका में दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। लोग उन्हें 'जिन्दा मसीहा' कहते थे और वैसा ही आदर-सम्मान भी देते थे। कई चर्चों, क्लबों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देने के लिए उन्हें बुलाया जाता था।

उनके व्याख्यानों में बहुत भीड़ होती थी। बड़े-बड़े प्राध्यापक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, वकील, धार्मिक जनता और पादरी इत्यादि सभी प्रकार के लोग उनके विचार सुनने के लिए आया करते थे। कभी-कभी तो इतनी भीड़ हो जाती थी कि हॉल में खड़े होने तक की जगह नहीं रहती थी। इस भीड़ में पुरुष-महिलाएँ सभी सम्मिलित होते थे। कभी-कभी पुरुषों से महिलाएँ ही अधिक हो जाया करती थीं, जो बहुत ध्यान से स्वामी रामतीर्थ का व्याख्यान सुनती थीं।

व्याख्यान के अंत में स्वामी रामतीर्थ श्रोताओं के प्रश्नों के उत्तर भी देते थे। एक शाम को एक सुंदर युवती ने अपने प्रश्नों के लिए स्वामी रामतीर्थ से अलग समय माँगा। स्वामीजी ने उसको दूसरे दिन सुबह मिलने को कहा।

दूसरे दिन वह युवती स्वामी रामतीर्थ से मिलने के लिए उनके निवासस्थान पर आयी। उसने स्वामीजी से कहा : ''मैं एक धनाढ्य पिता की पुत्री हूँ। मैं संसारभर में आपके नाम से कॉलेज, स्कूल, पुस्तकालय और अस्पताल खोलना चाहती हूँ। सारी दुनिया में आपके नाम से मिशन खुलवा दूँगी और प्रत्येक देश तथा नगर में आपके वेदान्त के प्रचार का सफल प्रबंध करवा दूँगी।''

स्वामी रामतीर्थ ने उसके उत्तर में इतना ही कहा कि ''दुनिया में जितने भी धार्मिक मिशन हैं, वे सब राम के ही मिशन हैं। राम अपने नाम की छाप से कोई अलग मिशन चलाना नहीं चाहता, क्योंकि राम कोई नयी बात तो कहता नहीं। राम जो कुछ कहता है, वह शाश्वत सत्य है। राम के पैदा होने से हजारों वर्ष पूर्व वेदों और उपनिषदों ने दुनिया को यही संदेश सुनाया है, जो राम आप लोगों के समक्ष यहाँ अमेरिका में प्रस्तुत कर रहा है। अतः राम को अपने नाम से अलग मिशन चलाने की कोई लालसा नहीं है। नाम तो केवल एक ईश्वर का ही ऐसा है, जो सदा-सदा रहेगा। व्यक्तिगत नाम तो ओस की बूँद की तरह नाशवान है।''

उस युवती ने जब बार-बार खैराती अस्पताल और कॉलेज इत्यादि खोलने की बात की और भारतीय विद्यार्थियों की सहायता की बात कही, तब स्वामी रामतीर्थ ने बहुत शांतिपूर्ण ढंग से पूछा कि ''आखिर आपकी आंतरिक इच्छा क्या है ? आप चाहती क्या हैं ?'' इस सीधे प्रश्न पर उस युवती ने स्वामी रामतीर्थ को घूरकर देखा, कुछ झिझकी व शरमायी फिर रहस्यमय चितवन से देखकर मुस्करायी और बोली कि ''मैं कुछ नहीं चाहती। केवल मैं अपना नाम मिसेज राम लिखना चाहती हूँ। मैं आपके नजदीक-से-नजदीक रहकर आपकी सेवा करना चाहती हूँ। बस केवल इतना ही कि आप मुझे अपना लें।''

स्वामी रामतीर्थ अपने स्वभाव के अनुसार खिल-खिलाकर हँस पड़े और बोले : ''राम न तो मास्टर है, न मिस। न मिस्टर है, न मिसेज। जब राम मिस्टर ही नहीं तो उसकी मिसेज होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।''

वह युवती लज्जित होकर व्याकुल हो उठी। उसकी प्यारभरी एक मुस्कराहट से अन्य लोग अपनी सुध खो बैठे थे और यह भारतीय स्वामी उसकी प्रार्थना का यों अनादर कर रहा है ! वह खीझकर बोली : ''जब तुम मास्टर और मिस्टर, कुछ नहीं हो तो तुम क्या हो ?'' स्वामी रामतीर्थ फिर मुस्कराये और बोले : ''राम एक मिस्ट्री है, एक रहस्य है।'' वह युवती अब बिल्कुल बौखला उठी : ''नहीं, नहीं

राम, मैं फिलॉसफी नहीं चाहती। मैं तुम्हें दिल से प्यार करती हूँ। मुझे आत्महत्या से बचाओ। मैं तुमसे नजदीक का रिश्ता चाहती हूँ।''

स्वामी रामतीर्थ शांतिपूर्वक बोले : ''ठीक है, मुझे मंजूर है।'' युवती के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गयी। स्वामी रामतीर्थ ने कहा कि ''मैं तुमसे नजदीक-से-नजदीक तो हूँ ही। कहने को हम दोनों अलग-अलग दिखलायी देते हैं, किंतु आत्मा के रिश्ते से हम-तुम दोनों एक ही हैं। इससे और ज्यादा नजदीक का रिश्ता क्या हो सकता है ?'' युवती इस उत्तर से पागल हो उठी। वह कहने लगी : ''फिर वही फिलॉसफी !'' उसने परेशानी दिखलाते हुए कहा कि ''मैं आत्मा का रिश्ता नहीं चाहती। मैं तुमसे शारीरिक नजदीकी का (हाड़-मांस का) रिश्ता चाहती हूँ। राम ! मुझे निराश मत करो। मैं तुमसे प्यार की भीख माँगती हूँ। बस, और कुछ नहीं।''

स्वामी रामतीर्थ शांत भाव से बैठे थे। वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा : ''जानती हो हाड़ और मांस का नजदीक-से-नजदीक का रिश्ता माँ और बेटे का ही होता है। माँ के खून और हाड़-मांस से बेटे का खून और हाड़-मांस बनता है। बस, आज से तुम मेरी माँ हुई और मैं तुम्हारा बेटा।''

यह उत्तर सुनकर युवती ने अपना माथा पीट लिया और बोली : ''You have completely defeated me, Swamiji.

अर्थात् आपने मुझे पूर्ण रूप से परास्त कर दिया।

राम ! तुम्हारा दिल पत्थर का है। सचमुच मैं पागल हो जाऊँगी। मैं क्या करूँ स्वामी, मैं क्या करूँ ?'' युवती ने अपनी दोनों हथेलियाँ अपनी दोनों आँखों पर रखीं और फूट-फूटकर रोने लगी। उधर स्वामी रामतीर्थ ने भी अपनी आँखें बंद कर लीं और वे समाधिस्थ हो गये। जब उनकी समाधि खुली तो उन्होंने देखा कि वह युवती कमरे से बाहर जा चुकी थी।

उस घटना के पश्चात् मनोरीना नाम की वह युवती बराबर स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानों में आती तो रही, किंतु दूर एक कोने में बैठकर रोती रहती थी। एक दिन स्वामी रामतीर्थ ने व्याख्यान के पश्चात् उसे अपने पास बुलाकर बहुत समझा-बुझाकर शांत कर दिया। बाद में वह स्वामी रामतीर्थ की भक्त बन गयी और उनकी इन्डो अमेरिकन सोसाइटी की एक प्रमुख संरक्षक भी रही।

गीता प्रश्नोत्तरी

१७१. पाँचों पाण्डवों के नाम बताइये।
१७२. 'मेरे अंग शिथिल हुए जा रहे हैं।' – यह बात किसने, किसको कही ?
१७३. न किसीको मारता है, न किसीसे मरता है – वह क्या है ?
१७४. गीता में कितने अध्याय हैं ?
१७५. श्रीमद्भगवद्गीता की रचना किसने की ?
१७६. गीता का मूल ज्ञान क्या है ?
१७७. श्रीकृष्ण ने गीता में ज्ञान का उपदेश किसको दिया है ?
१७८. अर्जुन के ध्वज पर क्या निशान था ?
१७९. महाभारत के युद्ध में सर्वप्रथम शंख किसने बजाया ?
१८०. अर्जुन के शंख का नाम क्या था ?

पिछले अंक के प्रश्नों के उत्तर

१६१. तीन १६२. तीन १६३. परमात्मा का नाम १६४. देश, काल और पात्र के अनुसार दिया हुआ दान १६५. छब्बीस १६६. कौरवों के १६७. धृष्टद्युम्न (प्रधान सेनापति) १६८. भीष्म पितामह (प्रधान सेनापति) १६९. दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को १७०. अर्जुन का।

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

सत्‌शिष्य के लक्षण

शिष्य का हित साधने के लिए गुरु ही माता, गुरु ही पिता होते हैं तथा बंधु व सुहृद भी गुरु ही होते हैं । गुरु की सेवा ही उसका नित्यकर्म होता है, गुरु की सेवा ही उसका धर्म होता है । गुरु ही उसके आत्माराम होते हैं । इस तरह सुहृद होने का सारा गौरव सद्‌गुरु को ही प्राप्त होता है । इस प्रकार गुरु को ही पूर्ण रूप से अपना आप्त मानना चाहिए ।

देह में यदि अहंता को दृढ़ किया जाय तो देह के सम्बंधियों में ममता उत्पन्न होती है । जब देहाभिमान ही चित्त को नहीं छूता तो ममता भी तत्काल दूर हो जाती है । देह तो मलमूत्र की गठरी है तथा नाशवान है, ऐसा तो प्रत्यक्ष दिखता ही है । अतः उसके प्रति अहंबुद्धि या अहंकार समाप्त होकर, देहभावना मिटकर गुरुकृपा से 'सोऽहंबुद्धि' दृढ़ हो जाती है । सोऽहम्‌-भावना दृढ़ होकर उसकी अहंभावना तथा ममत्वभावना छूटी हुई होती है - यही शिष्य को प्राप्त होनेवाला साधक का सद्‌गुण 'निर्ममता' है ।

सत्‌शिष्य चित्त को कभी भी चंचल नहीं होने देता । वह सदा-सर्वदा आत्मा के मध्य रहने के लिए ही निश्चलता बनाये रखता है । उसका शरीर यदि चंचल भी हो तो भी उसका चित्त गुरुचरणों में पूर्णतया निश्चल ही रहता है । उस पर विक्षेप के कितने ही प्रसंग आकर पड़ें, फिर भी उसकी वृत्ति गुरुचरणों में ही अटल रहती है । शरीर-व्यापार करते हुए भी जिसके हृदय में कोई गड़बड़ नहीं रहती, जो गुरुचरणों का ही दृढ़ आश्रय लिये रहता है, वही सच्चा परमार्थी शिष्य होता है । जिसके चित्त में चंचलता होती है वह तो स्वहित-साधन करनेवाला शिष्य ही नहीं होता । जिसके हृदय में निश्चलता होती है, वही परमार्थ का साधक होता है । इस प्रकार की निश्चलता को सिद्ध करके जो सच्चे स्वहित की इच्छा करता है, वही गुरुपदेश के द्वारा क्षणार्ध में ही परमार्थ का पात्र बन जाता है ।

अंतःकरण का निश्चलपना ही शिष्य का श्रेष्ठ लक्षण होता है । इससे छः विकारों का नाश होता है । षड्‌विकार देह में होते हैं लेकिन शिष्य तो देहबुद्धि को छूता ही नहीं । अतः गुरूपदेश के अनुसार वर्तन करने के कारण उसके विकार भी नष्ट हो जाते हैं । ऐसी निश्चलता सिद्ध करके जो अर्थ-जिज्ञासा पूर्वक परमार्थ साधने के लिए तैयार होता है, वही गुरुचरणों का भजन करने लगता है । जिसमें परमात्म-जिज्ञासा ही न हो, वह गुरु के भजन में भी नहीं लग सकता और यदि किसी काल में ऐसे भजन में लग भी जाय तो वह विषय-लालच के कारण ही लगेगा । विषयों का स्वार्थ छोड़कर परिपूर्ण तत्त्वार्थ जानने के लिए ही परमार्थ-भजन में लगना, इसीको 'जिज्ञासा' कहते हैं । ऐसी तत्त्व-जिज्ञासा मन में रखकर ही वह शिष्य परमार्थ-प्रेम को बढ़ाता है । परमार्थ-विषय में अतिशय प्रेम और बढ़ती आस्था यही शिष्य का उत्तम लक्षण है ।

['एकनाथी भागवत' से]

परीवादात् खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः ।
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥

'गुरु को झूठा दोष लगानेवाला गधा होता है, उनकी निंदा करनेवाला निःसंदेह कुत्ता होता है, अनुचित रीति से उनके धन को भोगनेवाला कृमि होता है और उनके साथ डाह रखनेवाला कीट होता है ।'

(मनुस्मृति : २.२०१)

एकादशी माहात्म्य

[पद्मिनी (कमला) एकादशी : २८ जुलाई]

अर्जुन ने कहा : हे भगवन् ! अब आप अधिक (लौंद/मल/पुरुषोत्तम) मास की शुक्लपक्ष की एकादशी के विषय में बतायें, उसका नाम क्या है तथा व्रत की विधि क्या है ? उसमें किस देवता की पूजा की जाती है और उसके व्रत से क्या फल मिलता है ?

श्रीकृष्ण बोले : हे पार्थ ! अधिक मास की शुक्लपक्ष की एकादशी अनेक पुण्यों को देनेवाली है। इसका नाम 'पद्मिनी' है । इस एकादशी के व्रत से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त होता है। यह अनेक पापों को नष्ट करनेवाली तथा मुक्ति और भक्ति प्रदान करनेवाली है । इस व्रत की विधि, फल व गुणों को ध्यानपूर्वक सुनो : दशमी के दिन व्रत शुरू करना चाहिए। एकादशी के दिन प्रातः नित्यक्रिया से निवृत्त होकर पुण्यक्षेत्र में स्नान करने चले जाना चाहिए । वहाँ गोबर, मृत्तिका, तिल, कुश तथा आँवले के चूर्ण से विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए । स्नान करने से पहले शरीर में मिट्टी लगाते हुए उसीसे प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे मृत्तिके ! मैं तुमको नमस्कार करता हूँ। तुम्हारे स्पर्श से मेरा शरीर पवित्र हो । समस्त औषधियों से युक्त और पृथ्वी को पवित्र करनेवाली, तुम मुझे शुद्ध करो । तुम मेरे शरीर को छूकर मुझे पवित्र करो। हे शंख-चक्र-गदा धारी ! देवों के देव ! जगन्नाथ ! आप मुझे स्नान के लिए आज्ञा दीजिये।'

इसके उपरांत वरुण मंत्र को जपकर पवित्र तीर्थों के अभाव में उनका स्मरण करते हुए किसी तालाब में स्नान करना चाहिए। स्नान करने के पश्चात् स्वच्छ और सुंदर वस्त्र धारण करके, संध्या-तर्पण करके मंदिर में जाकर धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, केसर आदि से भगवान की पूजा करनी चाहिए । उसके उपरांत भगवान के सम्मुख नृत्य-गान आदि करें ।

साथ ही भक्तजनों के साथ भगवान के सामने पुराण की कथा सुननी चाहिए । अधिक मास की शुक्लपक्ष की 'पद्मिनी' एकादशी का व्रत निर्जल करना चाहिए। यदि मनुष्य में निर्जल रहने की शक्ति न हो तो उसे जलपान या अल्पाहार से व्रत करना चाहिए। रात्रि में जागरण करके नृत्य और गान सहित भगवान का स्मरण करते रहना चाहिए । प्रति पहर मनुष्य को भगवान नारायण या महादेव की पूजा करनी चाहिए।

भगवान को पहले पहर में नारियल, दूसरे में बिल्वफल, तीसरे में सीताफल और चौथे में सुपारी व नारंगी अर्पण करनी चाहिए । इससे पहले पहर में अग्निहोम का, दूसरे में वाजपेय यज्ञ का, तीसरे में अश्वमेध और चौथे में राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। इस व्रत से बढ़कर संसार में कोई यज्ञ, तप, दान या पुण्य नहीं है । एकादशी का व्रत रखनेवाले मनुष्य को समस्त तीर्थों और यज्ञों का फल मिल जाता है।

इस तरह से सूर्योदय तक जागरण करना चाहिए और स्नान करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार जो मनुष्य विधिपूर्वक भगवान की पूजा तथा व्रत करते हैं, उनका जन्म सफल होता है और वे इस लोक में अनेक सुखों को भोगकर अंत में भगवान विष्णु के परम धाम को प्राप्त होते हैं । हे पार्थ ! मैंने तुम्हें 'पद्मिनी' एकादशी के व्रत का पूरा विधान बता दिया ।

*

धर्मेण हन्यते व्याधिर्धर्मेण हन्यते ग्रहः ।
धर्मेण हन्यते शत्रुर्यतो धर्मस्ततो जयः ॥

'धर्म से रोग नष्ट होते हैं, धर्म से ग्रहों की पीड़ा दूर होती है, धर्म से शत्रुओं का नाश होता है। जहाँ धर्म होता है वहाँ विजय होती है।' **(महाभारत)**

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥

'धर्म से अर्थ प्राप्त होता है, धर्म से सुख प्राप्त होता है, धर्म से ही समस्त वस्तुओं की प्राप्ति होती है । अतः इस जगत में धर्म ही सार है।'

(श्री वाल्मीकि रामायण : ३.९.३०)

स्वस्थ रहिये, प्रभुरस पाइये

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

मानव-शरीर में नाभि के पीछे मेरुदंड में मणिपुर चक्र स्थित है। प्रत्येक चक्र का अपना बीजमंत्र होता है, जिसका जप करने से वह चक्र क्रियाशील होकर तत्सम्बंधी रोगों को दूर करता है।

मणिपुर चक्र का बीजमंत्र 'रं' है जिसका जप अल्सर, कोष्ठबद्धता, अतिसार एवं पाचन-सम्बंधी समस्त दोषों के निराकरण में अतिशय प्रभावी है। प्रतिदिन प्रातः सूर्योदय के कुछ समय पश्चात् सूर्य की किरणें नाभि पर पड़ें इस ढंग से वज्रासन में बैठें। श्वास बाहर छोड़कर बहिर्कुंभक करें। फिर 'रं' का २५ बार जप करते हुए पेट अंदर-बाहर करें। इससे मंदाग्नि, एसिडिटी, गैस - सभी पर जादुई असर पड़ेगा।

बारिश का मौसम तो वैसे भी गैस और मंदाग्नि करनेवाला है। इस मौसम में इस मंत्र का लाभ अवश्य उठाना चाहिए। इलायची, काली मिर्च, सोंठ, अजवाईन - इन चारों को समान मात्रा में लेकर एकदम बारीक कूट लें, फिर छान लें। २ ग्राम चूर्ण गुनगुने पानी के साथ फाँक लें। इससे पेटदर्द, वायु-विकार, अफरा आदि में फायदा होगा तथा दवाओं के व्यर्थ खर्च और साइड इफेक्ट से बच जायेंगे। इससे भी बढ़िया है वज्रासन में बैठकर 'रं' बीजमंत्र के जप का उपरोक्त प्रयोग। जिसको जो अनुकूल पड़े, वह करे।

(नियमित रूप से यह प्रयोग करने पर कुछ ही दिनों में आप देखेंगे सूर्यदेव व बीजमंत्र का चमत्कारिक प्रभाव ! आप यह प्रयोग विधिवत् सीख सकते हैं पूज्यश्री के सान्निध्य व मार्गदर्शन में आयोजित शक्तिपात साधना शिविरों में।)

नाभि से नीचे स्वाधिष्ठान केन्द्र है जिसे शौर्य-केन्द्र भी कहते हैं। 'शक्तिपुंज' एवं 'पेट का मस्तक' कहकर वैज्ञानिकों ने इसका निरूपण किया है।

इसे सक्रिय करने व पूरे शरीर को स्वास्थ्य-लाभ प्रदान करने के लिए सुबह खाली पेट धरती पर कंबल आदि कोई विद्युत कुचालक आसन बिछाकर शवासन में लेट जायें एवं शरीर को शिथिल करें। दोनों हाथों व उनकी उँगलियों को पेट पर नाभि के पास आमने-सामने रखें। दोनों नथुनों से नाभि-पेडू तक खूब गहरा श्वास भरें और 'रं' बीजमंत्र का मानसिक जप करें। पेट को थोड़ा ऊपर-नीचे और कमर को जरा-सा दायें-बायें हिलायें। १० से १५ सेकंड बाद श्वास के साथ रोगों के परमाणुओं को मुँह के द्वारा बाहर फेंकिये। अगर आप श्वास पर नजर जमाकर रखेंगे तो थोड़े ही दिनों में आपको उन रोगों के परमाणु दिखने लगेंगे।

आप देखें चाहे न देखें लेकिन आरोग्य-लाभ गजब का होगा। रोज ऐसे १० प्राणायाम करें और हर प्राणायाम में १० से १५ सेकंड तक श्वास को अंदर रोकें, फिर छोड़ें। हम भी करते हैं रोज।

अगर स्वप्नदोष, पानी पड़ने की बीमारी या कामविकार सताता हो तो सर्वांगासन (चित्र देखें) करके योनि को सिकोड़ लें और पेट को अंदर की ओर खींचे। श्वास को बाहर निकालकर योनि का संकोचन करते-करते भावना करें कि 'मेरा वीर्य ऊर्ध्वगामी हो रहा है। मेरा स्वप्नदोष का रोग या पानी पड़ने की बीमारी दूर हो रही है अथवा कामविकार से मेरी रक्षा हो रही है।'

'अर्यमा' पितरों में श्रेष्ठ माने गये हैं। भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है : 'पितरों में अर्यमा नामक पितर मैं हूँ।' उन पितरश्रेष्ठ के **'ॐ अर्यमायै नमः।'** इस भगवत्स्वरूप मंत्र का जप करें। इससे

कामविकार एवं धातु-सम्बंधी रोगों से रक्षा होती है। यह प्रयोग ४०-५० सेकंड तक किया जा सकता है। ऐसा चार-पाँच बार करें।

चाय, कॉफी, कामुक विचारों और फिल्मों से अपने को बचाइये। वीर्यनाश माने सर्वनाश ! जो इस नाश से अपने को बचाने में प्रयत्नशील रहता है, वही बुद्धिमान है। जो जिह्वा के चटोरेपन और काम-इन्द्रिय के विकार से अपने को सुरक्षित कर लेता है, उसके सारे मंत्र और सारी साधनाएँ सहज में एवं निर्विघ्न रूप से सफल हो जाती हैं।

नवशक्तिप्रदायक खंडाम्रपाक

इस खंडाम्रपाक की विधि तथा महिमा ब्रह्माजी ने महर्षि भार्गव से कही थी। यह पाक वीर्य, बुद्धि एवं आयुष्य बढ़ानेवाला तथा वृद्धों को तारुण्यवत् शक्ति प्रदान करनेवाला है।

जिन स्त्रियों को बार-बार मृतगर्भ अथवा गर्भपात हो जाता हो अथवा जो वंध्या हों, उन्हें अगर इस पाक का सेवन कराया जाय तो संतानप्राप्ति होती है।

इसके नित्य सेवन से अरुचि, श्वास (साँस फूलना), सर्दी, खाँसी, पीनस (पुराना जुकाम), क्षयरोग (टी.बी.), अम्लपित्त, रक्तपित्त, यकृत-विकार, बवासीर, पांडुरोग, पीलिया, स्वरभंग, हृदयरोग, मस्तिष्क शूल, मलावरोध, मूत्रावरोध, गैस, पथरी आदि का नाश हो जाता है।

सामग्री एवं बनाने की विधि : अच्छे पके हुए आम का रस २ कि. २५० ग्रा., मिश्री ५६० ग्राम, घी (गाय का) २८० ग्राम, सोंठ १४० ग्राम, काली मिर्च ७० ग्राम, पीपर ३५ ग्राम, पानी ५६० मि.ली.।

इन द्रव्यों को मिट्टी के बर्तन में एकत्रित करके धीमी आँच पर पकायें। पकाते समय लकड़ी की चम्मच से हिलाते जायें। मिश्रण गाढ़ा होने पर उसमें पीपरामूल, नागरमोथ, चवक, धनिया, जीरा, स्याहजीरा, इलायची, नागकेसर, दालचीनी (तज), तालीसपत्र - इन सबका समभाग मिश्रण बनाकर उसमें से १७ ग्राम चूर्ण मिलायें। बर्तन को नीचे उतारकर ठंडा कर लें। पाक ठंडा होने पर उसमें १४० ग्राम शहद मिलायें।

सेवन की मात्रा : भोजन के पूर्व ४० ग्राम या पाचनशक्ति के अनुसार।

पाठकों के लिए

पाठक बंधुओं,

'ऋषि प्रसाद' पत्रिका आज अध्यात्म-जगत के साहित्य-गगन में सूर्य के समान देदीप्यमान हो रही है। १७ लाख की गगनचुंबी सदस्य-संख्या को पार करके करोड़ों पाठकों को घर बैठे ही दिव्यामृत का रसपान कराने की 'ऋषि प्रसाद' की इस गौरवमयी सफलता में **आप सभीकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है, जो निश्चय ही सराहनीय है।**

आज के अशांत, तनावग्रस्त और वासनामय वातावरण में पूज्यश्री की सारगर्भित अमृतवाणी से ओतप्रोत 'ऋषि प्रसाद' वास्तव में आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक - तमाम व्याधियों के लिए रामबाण सिद्ध हुई है। **यह करोड़ों पाठकों का अनुभव है।** इसके पवित्र एवं प्रेरक मार्गदर्शन से जीवन में आनंद, उल्लास, सुख, शांति, आरोग्यता और व्यवहार में सफलता प्राप्त कर आप सभी लाभान्वित हो रहे हैं।

अतः आप सभी पाठकों से नम्र निवेदन है कि अपने स्नेही, मित्रों व स्वजनों को इस पत्रिका का सदस्य बनायें (प्रत्येक पाठक कम-से-कम एक सदस्य बनाये) और साथ ही संकल्प लें कि अपनी भारतीय संस्कृति के पोषक इस आध्यात्मिक खजाने को विश्वभर में पहुँचाने के शुभ कार्य की शृंखला में एक कड़ी बनकर इस दैवी कार्य में सहभागी होंगे।

आइये ! हम सब 'ऋषि प्रसाद' द्वारा समाज में आध्यात्मिक क्रांति लायें। शारीरिक स्वास्थ्य व मानसिक प्रसन्नता प्राप्त कर एवं बुद्धि में बुद्धिदाता का ज्ञान भरकर मानव-जीवन को सार्थक करें।

मंदाग्नि के कारण, लक्षण व उपाय

व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः।
स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणं च ॥

शरीर में रोग उत्पन्न होने पर उसका निवारण करना तथा स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण करना यह आयुर्वेद का प्रयोजन है। विविध व्याधियों में रोगनिवारणार्थ किये जानेवाले सहज-सुलभ उपायों की जानकारी इस लेखमाला के द्वारा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है :

मंदाग्नि

रोगाः सर्वेऽपि मंदग्नौ।

'सभी रोगों का मूल कारण मंदाग्नि है।'

सामान्यतः मंदाग्नि का अर्थ है - भूख न लगना। आयुर्वेद के अनुसार जठराग्नि जब भोजन का सम्यक् पाचन कर उससे शरीरपोषक अंश (रस-रक्तादि धातु) बनाने में असमर्थ होती है, तब उस व्याधि को मंदाग्नि कहा जाता है। मंदाग्नि के कारण न पचे हुए आहार से कच्चा रस अर्थात् आम उत्पन्न होता है। यह आम रस रक्तवाहिनियों द्वारा संपूर्ण शरीर में भ्रमण कर शरीर में भारीपन, जकड़न, आलस्य, तंद्रा, निद्रा, ज्वर आदि लक्षण उत्पन्न करता है। अगर समय पर इसकी चिकित्सा नहीं की गयी तो यही कच्चा रस दीर्घकाल के बाद हृदयरोग, मधुमेह, किडनी फेल्युअर जैसी भयानक व्याधियों का हेतु बन जाता है।

मंदाग्नि के कारण : आहारसेवन-विषयक सामान्य नियमों का उल्लंघन करने, विरुद्ध आहार लेने, अति अल्प अथवा अत्यधिक मात्रा में भोजन करने, पचने में भारी, अति शीत या आवश्यकता से अधिक पानी मिलाकर बनाये गये व्यंजन (बहुत पतली दाल आदि) तथा अति स्निग्ध अथवा अति रुक्ष पदार्थों का सेवन करने, बहुत पानी पीने, अनुचित समय पर भोजन करने, पहले सेवन किये हुए अन्न का सम्यक् पाचन होने से पहले दुबारा भोजन करने, मल-मूत्रादि के वेगों को रोकने तथा दिन में सोने, सतत बैठे रहने, श्रम तथा व्यायाम के अभाव, जागरण, चिंता, भय, शोक आदि मानसिक विकारों के कारण भी मंदाग्नि का रोग हो जाता है।

लक्षण : भूख न लगना, अल्प तथा हलका आहार लेने पर भी आहार का पाचन न होना, सिर तथा पेट में भारीपन, मुँह में पानी आना, शरीर गल जाना आदि।

उपाय : भूख न लगने पर उपवास सर्वोपरि औषध है। कहा भी गया है :

अर्धरोगहरी निद्रा सर्वरोगहरी क्षुधा।

अर्थात् यथायोग्य नींद से आधा रोग मिट जाता है व उपवास रखने से रोग पूर्णतः नष्ट हो जाता है। मंदाग्नि के रुग्ण को हफ्ते में अथवा १५ दिन में एक दिन उपवास अवश्य रखना चाहिए। उपवास के दिन एक गिलास गर्म पानी में एक चम्मच नींबू का रस, सेंधा नमक व चुटकीभर हींग मिलाकर लें। यह अनपचे आहार तथा दोषों को मल-मूत्र के द्वारा शरीर से बाहर निकाल देता है। उपवास के दूसरे दिन केवल मूँग का पानी लें। तीसरे दिन मूँग की पतली दाल लें। बाद में मूँग, खिचड़ी जैसा हलका आहार लेकर धीरे-धीरे सामान्य भोजन लेना चालू करें।

जिस प्रकार अंगारों पर सूखी घास डालने से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है और बड़ी लकड़ी को भी जलाने में समर्थ हो जाती है, उसी प्रकार उपवास के बाद हलके आहार से प्रज्वलित जठराग्नि आहार का सम्यक् पाचन करने में समर्थ हो जाती है।

बेकरी की सभी चीजें पचने में भारी होती हैं और चावल के आटे से व मैदे से बनी सभी चीजें आँतों को कमजोर करती हैं। इनका सेवन करने पर उस समय तो पता नहीं चलता लेकिन बुढ़ापे में जब आँतें कमजोर हो जाती हैं, तब इनका बड़ा भारी मूल्य चुकाना पड़ता है। अतः इडली, डोसा तथा पीजा आदि फास्टफूड दीर्घ जीवन और स्वास्थ्य के बड़े भारी दुश्मन हैं।

भोजन में मेथी, करेला जैसे कड़वे पदार्थों का भी समावेश करें । दूध से बने पदार्थ, मिठाई, तले हुए, चरपरे, बाजारू व बासी पदार्थों का सेवन बिल्कुल न करें । भोजन खूब चबा-चबाकर करें तथा बीच-बीच में गुनगुने पानी के घूँट भरें, परंतु भोजन के बाद पानी कदापि न पीयें । पीने के लिए गुनगुने जल का ही प्रयोग करें ।

भोजन के बाद :

अगस्त्यं कुंभकर्णंच शनिं च बडवानलम् ।
आहारपरिपाकार्थं स्मरेद् भीमं च पंचमम् ॥

इस मंत्र का उच्चारण करते हुए पेट पर हाथ घुमायें । इससे पाचनक्रिया में विलक्षण सुधार होता है ।

भोजन के बाद सौ कदम चलकर वज्रासन में बैठना भी लाभदायी है । मध्यमा उँगली को देशी घी या सरसों के तेल में डुबाकर नाभिकेन्द्र पर घड़ी की सुइयों की विपरीत दिशा में निम्न श्लोक का उच्चारण करते हुए घुमाने से भी पाचनक्रिया तीव्र हो जाती है ।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥
(गीता : १५.१४)

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजी की गुरुसेवा

ताड़का-वध के बाद मुनि विश्वामित्र से दिव्यास्त्रों को पाकर श्रीरामजी लक्ष्मणजी के साथ छः दिन और छः रात तक बिना सोये सतत सावधानीपूर्वक विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षा करते रहे और निर्दयी, दुराचारी, पापकर्मी व रक्तभोजी सुबाहु आदि राक्षसों का संहार किया । यज्ञ समाप्त होने पर मुनि विश्वामित्र उनकी गुरुभक्ति देख प्रसन्न होकर बोले :

कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचस्त्वया ।
सिद्धाश्रममिदं सत्यं कृतं वीर महायशः ॥

'महाबाहो ! मैं तुम्हें पाकर कृतार्थ हो गया । तुमने गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन किया । महायशस्वी वीर ! तुमने इस सिद्धाश्रम का नाम सार्थक कर दिया ।' **(श्री वाल्मीकि रामायण : १.३०.२६)**

पूज्य बापूजी की कृपा से नया जीवन

मैंने पूज्य गुरुदेव से १९९६ में मंत्रदीक्षा ली थी । ११ दिसम्बर २००२ को दोपहर के ११-३० बजे मैं अपनी बाईक पर घर लौट रहा था । तब एक मोड़ पर तीव्र गति से चलती हुई ट्रक ने मुझे जोरदार टक्कर लगायी । मैं बाईकसहित १० फुट तक घसीटा गया । मेरा हेल्मेट भी निकल गया । मैं सड़क पर पड़ा था । अभी भी ट्रक को अपनी ओर आते देखकर मुझे अपना अंतिम समय निकट दिखायी दे रहा था । मेरे और ट्रक के बीच कुछ ही दूरी बची थी । ट्रक का अगला टायर मेरी छाती पर से गुजरने ही वाला है ऐसा नजर आता था । मौत नजदीक है ऐसा प्रतीत होने लगा तो मैंने आँखें बंद कर लीं और तीन बार 'नारायण... नारायण... नारायण...' बोला तथा हृदय में पूज्य बापूजी का ध्यान किया ।

जब मैं होश में आया तो देखा कि ट्रक का टायर ठीक मेरी छाती को छूकर रुक गया है । आसपास खड़े लोग मुझे मरा हुआ समझकर बाहर नहीं निकाल रहे थे । मेरी आवाज सुनकर लोगों को पता चला कि मैं अभी जिंदा हूँ । तब उन्होंने ट्रक को विपरीत दिशा में धक्का देकर मुझे बाहर निकाला । फिर मुझे अस्पताल में ले गये और वहाँ छाती का एक्स-रे, सोनोग्राफी आदि करवाया तो सब कुछ नॉर्मल था । केवल छाती पर थोड़ी-सी चोट लगी थी, जो १५ दिन में ठीक हो गयी ।

मैंने होश में आते ही मनौती मानी कि 'मैं उत्तरायण शिविर भरूँगा, बड़ बादशाह की १०८ प्रदक्षिणा करूँगा और पूज्य बापूजी की गुजरात में होनेवाली सभी पूनम भरूँगा ।'

- विरेश डोडीया
३८-बी, 'समर्थ कृपा', अनंतवाड़ी, भावनगर (गुज.).

२० वर्ष पुराना कोलाइटिस मिटा

परम पूज्य सद्गुरुदेव के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

मुझे लगभग २० वर्षों से कोलाइटिस (आँतों की सूजन) की बीमारी थी। इसके इलाज हेतु मैंने 'किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज' के मेडिसिन विभाग के विभिन्न डॉक्टरों से, यहाँ तक कि वहाँ के वरिष्ठ एलोपैथिक प्रोफेसर से भी १० वर्षों तक एलोपैथिक इलाज करवाया। बाद में लगभग पाँच वर्षों तक होम्योपैथिक इलाज करवाया लेकिन इनसे स्थायी रूप से रोग नहीं मिटा, केवल तात्कालिक लाभ मिलता था।

अमदावाद आश्रम में 'दीपावली महोत्सव-२००३' के अवसर पर पूज्य गुरुदेव ने पंचगव्य की महत्ता बतायी और सभी शिविरार्थियों को तीन-चार बार पंचगव्य पिलाया। इस पंचगव्य की प्रसादी से ही मुझे अत्यंत लाभ हुआ। फिर मैं आश्रम द्वारा अत्यंत शुद्धता एवं पवित्रता पूर्वक बनाया गया पंचगव्य घृत घर ले गया। कुछ दिन उसका विधिवत् मंत्रोच्चारणपूर्वक सेवन किया और आश्चर्य! पिछले २० वर्षों से लाइलाज सिद्ध हुई मेरी कोलाइटिस की बीमारी सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो गयी।

पढ़े-लिखे होकर भी अनजान बनकर एलोपैथी, जो खूब साइड इफेक्ट्स (दुष्परिणाम) करती है - सभी जानते हैं, उसकी शरण लेनेवाले मेरे देशवासियों से मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि वे अब पुनः पंचगव्य, पंचगव्य घृत, गोझरण, गोझरण अर्क आदि गौमाता के उपहारों तथा आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति का लाभ उठाकर अपने शरीर को नीरोग, तंदुरुस्त व सुदृढ़ बनायें। पंचगव्य तो हड्डियों तक के रोगों को निवृत्त करने की शक्ति रखता है।

गरीब-से-गरीब व्यक्ति भी ले सके ऐसी अत्यंत सस्ती, उत्तम गुणवत्तायुक्त दवाइयाँ उपलब्ध कराकर सम्पूर्ण समाज के स्वास्थ्य हेतु प्रयत्नरत इस संस्था को मैं खूब-खूब धन्यवाद देता हूँ।

– राजीव कुमार सक्सेना

उ.प्र. राज्य सेतु निगम कॉलोनी, लखनऊ.

वटसावित्री पूर्णिमा के अवसर पर हरिद्वार (उत्तरांचल) में २ से ४ जून तक ब्रह्मनिष्ठ परम पूज्य बापूजी का सत्संग-कार्यक्रम संपन्न हुआ। राष्ट्र के विभिन्न भागों से आये पूनम व्रतधारी साधक-साधिकाओं ने २ जून को सद्गुरुदेव का दर्शन-सत्संग प्राप्त कर प्रसाद लिया।

श्री योग वेदांत सेवा समिति, लुधियाना ने वर्षों तक मशक्कत करने के उपरांत अंततः ११ से १३ जून तक अपने यहाँ सत्संग-कार्यक्रम के लिए पूज्यश्री से समय निकलवा ही लिया। साहनेवाल स्थित आश्रम में ३ दिन तक आध्यात्मिक मेले जैसा माहौल बना रहा। यह स्थान शहर से लगभग २० कि.मी. दूर होते हुए भी अलख के औलिया, आत्मनिष्ठ संत पूज्य बापूजी की अमृतवाणी सुनने के लिए यहाँ बड़ी संख्या में भक्तवृंद उमड़ा।

१५ से १७ जून तक चण्डीगढ़ के आश्रम में 'गुरुपूर्णिमा महोत्सव' संपन्न कर १७ जून की दोपहर को पूज्यश्री 'रतवाड़ा साहिब' पहुँचे। उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व 'विश्व गुरमत रूहानी मिशन' के संत बाबा श्री हरपाल सिंहजी पूज्यश्री को आमंत्रित करने आश्रम में आये और घंटों तक उनके रूहानी सत्संग में सराबोर हुए। उनका कहना था कि मिशन के फाउंडर चेयरमैन संत बाबा वरियाम सिंहजी की ब्रह्मवेत्ता संत परम पूज्य बापूजी को रतवाड़ा साहिब लाने की हार्दिक इच्छा थी। संत बाबा हरपाल सिंहजी ने बताया कि ''संत बाबा वरियाम सिंहजी ने मुझे कहा था कि ब्रह्मवेत्ता पूज्य बापूजी सम्पूर्ण सिख समाज का भी गौरव हैं। उन्होंने अपनी रूहानी अमृतवाणी में 'गुरुग्रंथ साहिब' को स्थान देकर पूरे विश्व में इसका सराहनीय प्रचार-प्रसार किया है। यह हमारे लिए गौरव की बात है। सारे सिख समाज का फर्ज है कि वह इन लोकसंत पूज्य

बापूजी के जाहिर स्वागत-समारोह का आयोजन करे, उनका अभिनंदन करे, सम्मान करे।''

रतवाड़ा साहिब में पूज्यश्री को आमंत्रित कर उनका स्वागत-सम्मान करने की संत बाबा वरियाम सिंहजी की दिली ख्वाहिश थी, जो उनके जीवनकाल में पूरी न हो सकी। संत बाबा हरपाल सिंहजी ने उसको पूरा किया।

पूज्यश्री के स्वागत में रतवाड़ा साहिब से १ कि.मी. पहले ही मिशन के अग्रणी सिख बंधु सुसज्जित रथ एवं बैंड-बाजे के साथ तैयार खड़े थे। पूज्यश्री के वहाँ पहुँचते ही सम्पूर्ण परिसर उनकी जय-जयकार से गूँज उठा। श्री बाबाजी ने परंपरागत सिख-पगड़ी पहनाकर परम पूज्य बापूजी का स्वागत-सत्कार किया और हजारों की संख्या में उपस्थित संगत को निहाल करने की प्रार्थना की। फिर प्रारंभ हुआ पूज्यश्री की आत्मस्पर्शी अमृतवाणी का सुमधुर झरना, जिसका पान कर संगत मंत्रमुग्ध हो गयी और बीच-बीच में जय-जयकार से अपनी प्रसन्नता व्यक्त करती रही। सिख समाज के भक्तजन रतवाड़ा साहिब के विशाल दरबार में लोक-लाड़ले पूज्य बापूजी को अपने बीच पाकर फूले नहीं समा रहे थे।

परम पूज्य बापूजी के सान्निध्य में गुरुपूर्णिमा-महोत्सव

सफलता मनुष्यमात्र की माँग है लेकिन वह उन्हींका वरण करती है जो उत्तम मार्गदर्शक की शरण में जाते हैं। सर्वोत्तम मार्गदर्शक हैं ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु। इस रहस्य को जाननेवाले भारत के ऋषियों-मनीषियों ने हमें सांसारिक क्रियाकलापों से समय निकालकर ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों के सत्संग-सान्निध्य में जाने एवं सफलता की कुंजियाँ पाने की सीख दी है। साथ ही यह भी बताया है कि जिन महापुरुषों से हम इतना अनमोल ज्ञान पा रहे हैं, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना हमारा कर्तव्य है। इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति करानेवाला पर्व है - गुरुपूर्णिमा।

लोक-लाड़ले परम पूज्य बापूजी के शिष्यों की विशाल संख्या को ध्यान में रखते हुए हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी यह महापर्व कई स्थानों पर मनाया गया। लेकिन इस बार इस पर्व की एक विशेषता यह रही कि इसका तीन या चार नहीं अपितु छः स्थानों पर आयोजन किया गया। भक्तों की बढ़ती संख्या और पूज्यश्री की भक्तवत्सलता का कोई पार नहीं है...

११ से १३ जून तक लुधियाना (पंजाब) व १५ से १७ जून तक चण्डीगढ़ में आयोजित इस पर्व के संपन्न होते ही १८ से २० जून तक रजोकरी आश्रम (दिल्ली) में इसका आयोजन संपन्न हुआ। दिल्ली के गुरुपूर्णिमा पर्व का समापन होते ही २१ से २३ जून तक नागपुर (महाराष्ट्र) के रेशम बाग मैदान में यह पर्व संपन्न हुआ। तत्पश्चात् २५ से २७ जून तक पूज्य गुरुदेव के दर्शन-सत्संग का महासौभाग्य प्राप्त किया मुंबईवासियों ने।

पाँचों स्थानों पर सनातन धर्म के सपूतों ने सभी व्यवस्थाओं को नन्हा कर दिया। कहीं मेघ देवता मेहरबान रहे तो कहीं सूर्यदेव ! कुंभ की भाँति उमड़ी भीड़ मानों, कह रही थी :

आयी गुरुपूर्णिमा साधो, आओ खुशी मनायें हम।
ज्ञान, भक्ति और योग की कुंजी, आओ सद्गुरु से पायें हम॥

विश्वभर से आये विशाल शिष्य-समुदाय को गुरुपूर्णिमा की बधाई व शुभाशीष देते हुए पूज्य सद्गुरुदेव ने कहा : ''गुरुपूर्णिमा का पावन दिवस महर्षि वेदव्यासजी का अवतरण-दिवस, मन्वंतर का आदि-दिवस, विश्व के सर्वप्रथम दर्शनशास्त्र 'ब्रह्मसूत्र' एवं पंचम वेद 'महाभारत' की रचना का प्रारंभ-दिवस तथा संन्यासियों के चातुर्मास्य व्रत का आरंभ-दिवस है।

इस दिन जो शिष्य संयम-श्रद्धा-भक्ति से ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु का पूजन करता है, उसे वर्षभर के पर्व मनाने का फल मिलता है।

व्यासपूर्णिमा आत्मस्वरूप का ज्ञान पाने के अपने मुख्य दायित्व की याद दिलानेवाला पर्व है। सद्गुरु के प्रेम और ज्ञान की गंगा में पुनः-पुनः डुबकी लगाने हेतु प्रोत्साहन देनेवाला पर्व है।''

इस पर्व पर परम पूज्य बापूजी ने लौकिक व आध्यात्मिक उन्नति की कई अद्भुत कुंजियाँ बताकर अनेक यौगिक प्रयोग कराये। साधना में शीघ्र उन्नति हेतु जप और मौन की आवश्यकता पर जोर देते हुए परम पूज्य बापूजी ने कहा : ''शरीर की शुद्धि जल से

होती है, वाणी की शुद्धि सत्य से होती है, मन की शुद्धि विचार से तथा धन की शुद्धि दान से होती है। लेकिन मौनव्रत से शरीर, वाणी, मन, इन्द्रियादि सभीकी शुद्धि होती है । मौन से मन में उठनेवाले संकल्प-विकल्पों पर नियंत्रण होता है तथा इसके द्वारा मन को स्थिर किया जा सकता है।

मौन रखनेवाला साधक अनावश्यक वाद-विवादों एवं संकल्प-विकल्पों से होनेवाले शक्ति के ह्रास से सहज में ही बच जाता है। भौतिक कामनाओं से उसकी रक्षा होती है । राग-द्वेष पर विजय मिलती है। वह असत्य बोलने के वाणी के दोष से बच जाता है।

तपःसु सर्वेषु एकाग्रता परं तपः ।

'सभी तपों में एकाग्रता परम तप है।'

मौन-अवस्था में मन व इन्द्रियों पर संयम होने से एकाग्रता में बड़ी मदद मिलती है। एकाग्रता साधना में सफलता की कुंजी है। आध्यात्मिक जीवन के लिए यह अत्यंत आवश्यक है । यदि मौन के द्वारा अपनी शक्ति को सुरक्षित रखा जाय तो वह ओज में बदलकर ध्यान में सहायक होगी।

जो साधक नियमित रूप से ध्यान करते हैं, उन्हें दवाओं पर अधिक धन खर्च नहीं करना पड़ता। ध्यान सर्वाधिक प्रभावी टॉनिक है । ध्यान के समय जो शक्तिशाली तरंगें उत्पन्न होती हैं, वे शरीर की विभिन्न कोशिकाओं एवं मन पर अनुकूल प्रभाव डालती हैं। नया मन, नया हृदय, श्रेष्ठ अनुभव, श्रेष्ठ भावनाएँ, श्रेष्ठ चिंतन-प्रणाली, श्रेष्ठ कार्यप्रणाली, श्रेष्ठ दृष्टि का उद्‌भव - ये ध्यान के सुखद परिणाम हैं।

वाक्-इन्द्रिय माया का सबल अस्त्र है । इसके कारण झगड़े-उपद्रव भी हो जाते हैं तथा मन विक्षिप्त हो जाता है। वाक्-इन्द्रिय को नियंत्रित कर लेना माने आधा मन नियंत्रित कर लेना।

एकांतवास, संयम, धैर्य, मिताहार, आत्मनियंत्रण, मौन - ये ध्यान के सहायक साधन हैं। अति निद्रा, असंयम, आलस्य, वासनाओं का पोषण, सांसारिक लोगों की संगति, अति श्रम, अति भोजन - ये ध्यान में बाधा उत्पन्न करते हैं।

आत्मबल सब बलों का राजा है । मौनव्रत से आत्मबल में वृद्धि होती है। शारीरिक पीड़ा के समय मौन रहने से मन को शांति मिलती है। मौन-विश्राम से शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य व सामर्थ्य में वृद्धि होती है तथा मानसिक तनाव भी दूर होते हैं।

जिसके जीवन में (१) वाणी (२) मन (३) क्रोध (४) उदर (पेट की भूख) (५) काम एवं (६) चटोरेपन (स्वाद) के आवेगों को रोकने का सद्‌गुण है, उसका संकल्प सारे विश्व को हिला सकता है।''

बापूजी ने साधकों को उनकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए अपनी-अपनी क्षमतानुसार कोई-न-कोई नियम लेने तथा उसका दृढ़तापूर्वक पालन करने की प्रेरणा दी।

परम पूज्य सद्‌गुरुदेव ने कहा : ''गुरुदक्षिणा में तुम्हारे रुपये-पैसे, फल-फूल या मेवा-मिठाइयों की जरूरत नहीं है, फिर भी एक चीज की खूब जरूरत है :

तू तेरा उर आँगन दे दे, मैं अमृत की वर्षा कर दूँ।
तू तेरा अहं दे दे, मैं रब का रस भर दूँ ॥

कोई ४० साल तक मनमानी साधना करे और आप ४० दिन एकांत में मौन रहकर अमुक प्रकार की साधना करो तो आप अपने को ४० सालवालों से आगे महसूस करोगे।'' परम पूज्य बापूजी यह डंके की चोट पर कह रहे थे।

विभिन्न नगरों में आयोजित 'व्यासपूर्णिमा दर्शनोत्सव' में गुरु-शिष्य परंपरा की अनुपम झाँकी देखने को मिली। विशाल संख्या में उपस्थित शिष्य-समुदाय... चित्त में गुरुदर्शन की प्रसन्नता... हृदय में गुरु के प्रति स्नेह... नयनों में गुरुभक्ति की उछलती प्रेम-तरंग... गुरुदेव के मार्गदर्शन से उपलब्ध शांति, आनंद और अभिवादन के भाव... स्वास्थ्य की नूतन कुंजियाँ... साधना की नयी उमंग... कुछ नये संकेत, नये पाठ और नये प्रयोग... मानों, प्रभुप्राप्ति के लक्ष्य को हासिल करने में प्रयत्नरत इन विद्यार्थियों में से मिडल स्कूल के विद्यार्थी हाईस्कूल में, हाईस्कूल के विद्यार्थी कॉलेज में और कॉलेज के विद्यार्थी प्रभुप्राप्तिवाली आखिरी मंजिल में प्रवेश पाकर उन्नति का एहसास कर रहे हों।

व्यासपूर्णिमा दर्शनोत्सव का अंतिम चरण २ से ४ जुलाई तक अमदावाद आश्रम में संपन्न होने जा रहा है।

*

मुंबई में संपन्न हुआ गुरुपूनम का पर्व, कृतकृत्य हो गये उपस्थित भक्त सर्व ।
अति पावन यह वेला है उत्सव है अपूर्व, ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु मिले हमें उनपे है गर्व ॥

लुधियाना आश्रम (पंजाब) के विशाल सत्संग-मंडप को आत्मोन्नति के पिपासु सत्संग-प्रेमियों ने नन्हा बना दिया ।

R.N.I. NO. 48873/91 POSTAL REGISTRATION NO. GUJ-1132. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-15 OF EVERY MONTH. ✻ BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236. REGD NO. TECH/47 833/MBI/2003-
POSTING FROM MUMBAI 9 & 10 OF EVERY MONTH. ✻ FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO. - 400099. ✻ DELHI REGD. NO. DL-11513/2003-05 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003-05 POSTING FROM DELHI 5 & 6 OF EVERY MONTH.